स्वप्नदर्शी इंजीनियर
विश्वेश्वरैया

पढ़ें और सीखें योजना

स्वप्नदर्शी इंजीनियर विश्वेश्वरैया

डा० वीरेन्द्र भटनागर

विभागीय सहयोग
डा० हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

मई 1987
वैशाख 1909

PD 15T—NSY

प्रकाशन सहयोग

सम्पादन
प्रभाकर द्विवेदी **मुख्य सम्पादक**
नरेश यादव **सम्पादन सहायक**

उत्पादन
सी. एन. राव **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
डी. साईं प्रसाद **उत्पादन अधिकारी**
ए. एस. छतवाल **उत्पादन सहायक**

आवरण: चन्द्रप्रकाश टन्डन

मूल्य : रु० 7.55

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा विजयलक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स, K-6 लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वत: पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्त्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत, **पढ़ें और सीखें** शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि 1987 के अंत तक हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें

(ख) कथा-साहित्य
(ग) जीवनियाँ
(घ) देश-विदेश परिचय
(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली, और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक **स्वप्नदर्शी इंजीनियर विश्वेश्वरैया** के लेखन के लिए डा० वीरेन्द्र भटनागर ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में **पढ़ें और सीखें** पुस्तकमाला की यह योजना प्रो० अनिल विद्यालंकार के मार्गदर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा० रामजन्म शर्मा, डा० सुरेश पांडेय, डा० हीरालाल बाछोतिया और डा० अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन राजस्थान विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डा० रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं और इन पुस्तकों के लेखन में हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डा० रामदुलार शुक्ल सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डा०

बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं डा० रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी० एल० मल्होत्रा

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

प्रस्तावना

आजादी से पहले कल-कारखानों के क्षेत्र में हमारा देश बहुत पिछड़ा हुआ था। इंजीनियरिंग से सम्बन्धित सभी छोटे-बड़े कामों के लिए हमें विदेशों का मुँह ताकना होता था। ऐसे समय श्री विश्वेश्वरैया ने अपने कठिन परिश्रम व लगन से दुनिया को यह दिखला दिया कि इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी भारत के लोग बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। उन्होंने देश के उत्थान के लिए योजनाओं का महत्त्व बतलाया। वे चाहते थे कि हमारे देश में बड़े-बड़े उद्योग लगें जिससे देश की गरीबी दूर हो। लेकिन एक परतंत्र देश कर ही क्या सकता था? संतोष का विषय है कि आजादी मिलने के बाद भी श्री विश्वेश्वरैया हमारे बीच रहे और उन्होंने अपने सपने साकार होते हुए देखे। आजादी के बाद हमारे देश ने उद्योगों में तेजी से तरक्की की है और आज भारत को विश्वेश्वरैया जैसे महान् इंजीनियरों की पहले से भी कहीं अधिक आवश्यकता है।

भारत के आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। वे विश्वेश्वरैया जैसे महान् व्यक्ति के जीवन से बहुत कुछ सीख सकते हैं, परन्तु विश्वेश्वरैया जैसे महान् व्यक्तियों के जीवन पर कम ही पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इसका मुख्य कारण है कि उनका अधिकांश कार्य इंजीनियरिंग की गूढ़ बातों से सम्बन्धित है, जिसे जनसाधारण को समझाना आसान नहीं। यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने श्री विश्वेश्वरैया के जीवन पर ऐसी पुस्तक तैयार करने की पहल की जिसे बच्चे भी समझ सकें। प्रस्तुत पुस्तक में विश्वेश्वरैया के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं और उपलब्धियों के बारे में सरल ढंग से बतलाया गया है। हमें आशा है कि इस पुस्तक को पढ़कर बच्चे श्री विश्वेश्वरैया के जीवन से प्रेरणा लेंगे

और उनके आदर्शों को जहाँ तक संभव होगा,अपने जीवन में अनुसरण करने की चेष्टा करेंगे।

पुस्तक की अधिकांश सामग्री श्री विश्वेश्वरैया द्वारा रचित पुस्तक **मेरे कामकाजी जीवन के संस्मरण** (नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली) से ली गई है। लेखक ने कुछ अन्य पुस्तकों की भी मदद ली है जिसके लिए वह उनके लेखकों व प्रकाशकों का आभारी है। अंत में लेखक डा० अनिल विद्यालंकार और डा० हीरालाल बाछोतिया के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता है जिन्होंने पुस्तक की पांडुलिपि पढ़कर उसमें अनेक संशोधन किए।

वीरेन्द्र भटनागर

अनुक्रम

एक इंजीनियर, एक सपना

जिन दिनों हमारे देश के बड़े-बड़े नेता भारत की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन कर रहे थे, उन्हीं दिनों एक इंजीनियर भारत को आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से तेजी से आगे बढ़ाने के लिए अकेला जूझ रहा था। उस महान् इंजीनियर का नाम था श्री मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया। उनकी याद में उनका जन्म दिवस आज भी 15 सितम्बर को **अभियान्त्रिक-दिवस** के रूप में मनाया जाता है।

युवा विश्वेश्वरैया के जमाने में भारत की जनता विदेशी शासन से दबी, अज्ञान व सामाजिक संकीर्णताओं से घिरी थी। अंधविश्वासों की भरमार थी। चारों ओर गरीबी थी। नागरिकों का जीवन स्तर विदेशों के समृद्ध देशों के नागरिकों की तुलना में बहुत नीचा था। यह देखकर विश्वेश्वरैया को बहुत दु:ख होता था। वह सदा यही सोचते रहते थे कि किस प्रकार भारत की गरीब जनता का उद्धार किया जाए। उनका सपना था भारत को एक ऐसा समृद्ध और सम्पन्न देश बनाने का जिसके सभी नागरिक आधुनिक विज्ञान से प्राप्त सुख-सुविधाओं का लाभ उठा सकें। विश्वेश्वरैया ने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया और वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक जी-तोड़ काम करते रहे।

भारत सदा से गरीब देश नहीं रहा। सच्चाई तो यह है कि किसी जमाने में हमारे देश की गिनती सम्पन्न देशों में की जाती थी। विदेशी लोग इसे सोने की चिड़िया कहते थे। इतिहास बतलाता है कि आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भी सिन्धु घाटी के लोग उच्च कोटि का नागरिक जीवन बिताते थे—उनके मकान और गलियों में जल निकास की व्यवस्था होती थी। गणित और खगोल शास्त्र में हमारा देश बहुत

आगे था। कुतुबमीनार के पास खड़ा लोहे का खम्भा आज भी पुराने जमाने के रासायनिक ज्ञान की महिमा सुना रहा है।

किन्तु भारतीय विज्ञान की बहुमुखी धारा और उद्योगों का लोप तो तब आरंभ हुआ जब यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति आई। उन दिनों भाप इंजिन के आविष्कार के साथ ही यूरोप में तरह-तरह की मशीनों का निर्माण हो रहा था। नए-नए कारखाने खुल रहे थे। गाँवों के लोग शहर की तरफ आ रहे थे। नागरिकों का जीवन स्तर तेजी से ऊपर उठ रहा था। किन्तु दुर्भाग्य से उन दिनों हमारे देश में बड़ी अस्थिरता थी। अंग्रेज भारत में अपने पैर जमा रहे थे। छोटे-बड़े राजा-महाराजा आपस में एक दूसरे से लड़-भिड़ रहे थे। औद्योगिक क्रान्ति का हमारे देश पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ पा रहा था। इसके विपरीत, यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप कल-कारखानों में बहुत विकास हुआ और इन कारखानों में बने माल से लदे जहाज हमारे देश में आने लगे। इन सब बातों का हमारे कुटीर उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ा। हमारा देश कल-कारखानों के क्षेत्र में अन्य देशों की तुलना में पीछे होता गया और भारत की जनता का सारा जीवन कृषि और उससे सम्बन्धित दायरे में सिमटकर रह गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम कुछ दशकों तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वाह्न में राष्ट्रीय पुनर्जागरण से हमारे देश में नई चेतना आई। उन दिनों भारतीय व्योम पर लोकमान्य तिलक, मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी जैसे बड़े-बड़े नेता छाए हुए थे जो नागरिकों को मूल-भूत अधिकार दिलाने और भारत की स्वतन्त्रता के लिए एकजुट होकर प्रयास कर रहे थे। दूसरी ओर जगदीश चन्द्र बसु, सी० वी० रमन, मेघनाद साहा जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक भारत को फिर से विज्ञान के नक्शे पर स्थान दिलवाने के लिए प्रयत्नशील थे। ऐसे समय में विश्वेश्वरैया ने घोषणा की कि राजनैतिक परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी क्यों न हों, भारत की जनता को आधुनिक विज्ञान और इंजीनियरिंग का लाभ मिलना ही चाहिए।

विश्वेश्वरैया ने अपना जीवन ब्रिटिश शासित बम्बई प्रेसीडेन्सी में एक इंजीनियर के पद से प्रारंभ किया। अपनी कड़ी मेहनत, तीक्ष्ण

बुद्धि और ईमानदारी के बल पर वे शीघ्र उस सर्वोच्च पद पर पहुँच गए जहाँ तक कोई भारतीय उन दिनों जा सकता था—इससे ऊपर के पद केवल अंग्रेज़ों के लिए सुरक्षित थे।

बम्बई की राजकीय सेवा में विश्वेश्वरैया ने बड़ी लगन से काम किया। जल वितरण, सिंचाई, वर्षा तथा गन्दे जल निकास सम्बन्धी अनेक छोटी-बड़ी योजनाओं को उन्होंने पूरा किया। किन्तु विश्वेश्वरैया का मन इन साधारण योजनाओं से नहीं भरा। उन्हें यह देखकर बड़ी हैरानी होती थी कि हमारे देश में बड़ी-बड़ी नदियों का जल बगैर कोई लाभ लिए यूँही समुद्र में बहा दिया जाता है। विश्वेश्वरैया के मन में विचार उठते थे कि उन्हें किस प्रकार ऐसी बड़ी-बड़ी योजनाओं को बनाने का अवसर मिले जिनसे बाढ़ें रोकी जा सकें, सिंचाई की जा सके, बिजली बनाई जा सके और कारखाने खोले जा सकें। बम्बई की राजकीय सेवा में रहते हुए उन्हें इस प्रकार के अवसर पाने की कोई संभावना न थी। कुछ बड़ा कार्य कर दिखलाने की भावना से प्रेरित होकर विश्वेश्वरैया ने अपने ऐश्वर्यपूर्ण राजकीय पद से त्यागपत्र दे दिया और वह विदेशों के भ्रमण पर निकल पड़े।

बड़ी-बड़ी योजनाओं को बनाने का अवसर विश्वेश्वरैया को तब मिला जब उन्हें मैसूर राज्य के चीफ इंजीनियर के पद पर आमन्त्रित किया गया। कुछ समय बाद उन्हें मैसूर राज्य का दीवान बना दिया गया। इस प्रकार अपनी कड़ी मेहेनत, सूझ-बूझ और लगन से एक साधारण परिवार का व्यक्ति अपने ही राज्य में दीवान बन गया। मैसूर राज्य के दीवान के पद पर रहकर विश्वेश्वरैया ने इंजीनियरिंग के अतिरिक्त शिक्षा और समाज सुधार सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

विश्वेश्वरैया को यूरोप का रंग-ढंग अधिक पसन्द था पर फिर भी वह पगड़ी अवश्य पहनते थे। वह अनेक बार विदेश गए। उन्होंने प्रायः सभी समृद्ध और सम्पन्न देशों का भ्रमण किया। इन देशों की प्रगति देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी सभी यात्राओं में यह जानने की कोशिश की कि आखिर इन देशों की प्रगति का रहस्य क्या है। उन्होंने पाया कि इन देशों की प्रगति के पीछे उच्च शिक्षा,

विज्ञान और इंजीनियरिंग का बड़ा योगदान है। इन यात्राओं से विश्वेश्वरैया का यह मत पक्का हो गया कि भारत के विकास व आधुनिकीकरण की नींव केवल विज्ञान और उद्योगों पर ही धरी जा सकती है। भारत का योजनाबद्ध तरीके से औद्योगीकरण किस प्रकार किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में विश्वेश्वरैया ने अपने विचार **भारत का पुनः निर्माण** (1919) और **भारत के लिए योजनाबद्ध अर्थशास्त्र** (1934) नामक पुस्तकों तथा अपने अनेक छोटे-बड़े लेखों व रिपोर्टों में प्रस्तुत किए।

स्वतन्त्रता मिलने के बाद भारत सरकार ने औद्योगिक विकास के क्षेत्र में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जो कुछ किया उसकी धुँधली रेखाएँ विश्वेश्वरैया बहुत बरस पहले ही खींच चुके थे। भारत के इस महान् सपूत को भारत सरकार ने सन् 1955 में **भारतरत्न** की उपाधि देकर सम्मानित किया। □ □

जीवन यात्रा

आंध्र प्रदेश के कुरूनूल जिले में मोक्षगुंडम नाम का एक गाँव है। कई सौ साल पहले विश्वेश्वरैया के पूर्वज यहीं रहते थे। वंश परम्परा के अनुसार नाम के आगे पूर्वजों के गाँव का नाम भी जोड़ दिया जाता है, इस प्रकार विश्वेश्वरैया का पूरा नाम मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया पड़ा।

विश्वेश्वरैया का जन्म 15 सितम्बर 1861 में एक निम्न मध्यम वर्ग के परिवार में हुआ था। भारत के लिए सन् 1861 का वर्ष विशेष भाग्यशाली कहा जा सकता है क्योंकि इसी वर्ष पं० मोतीलाल नेहरू, पं० मदन मोहन मालवीय और रवीन्द्र नाथ टैगोर जैसे महान् व्यक्तियों ने भी जन्म लिया था। विश्वेश्वरैया के जन्म के समय उनके पिता मोक्षगुंडम में नहीं वरन् मैसूर राज्य के एक छोटे-से गाँव मुद्देनहलमी में रहते थे। यह गाँव बंगलौर से लगभग 60 किलोमीटर दूर है। विश्वेश्वरैया के पिता श्री मोक्षगुंडम श्रीनिवास शास्त्री अपने समय के जाने-माने वैद्य थे। वह धार्मिक भावना और सात्विक वृत्ति के व्यक्ति थे। विश्वेश्वरैया की माता श्रीमती बेंक चम्मा थीं। छः भाई-बहनों में विश्वेश्वरैया अपने माता-पिता की दूसरी संतान थे।

जब विश्वेश्वरैया केवल पाँच वर्ष के बालक थे और उनके पिताजी गाँव से बाहर गए हुए थे तो उनके घर पर चोरी हो गई। इस घटना से दुःखी होकर उनकी माताजी गाँव छोड़कर चिकबल्लापुर चली गईं। विश्वेश्वरैया की प्रारंभिक शिक्षा यहीं के मिडिल और हाई स्कूल में हुई। छोटी उम्र में ही उन्हें अपने माता-पिता के साथ रामेश्वरम् की तीर्थयात्रा पर पैदल जाने का अवसर मिला। अभी हाई स्कूल की पढ़ाई

पूरी भी न हो पाई थी कि उनके पिताजी का देहान्त हो गया। पढ़ाई जारी रखने के लिए विश्वेश्वरैया को अपने मामा के पास बंगलौर जाना पड़ा। बंगलौर में उन्होंने पहले हाई स्कूल की परीक्षा पास की, फिर उच्च शिक्षा के लिए सेन्ट्रल कालेज में प्रवेश लिया।

पढ़ाई के लिए वह अपने मामा पर आर्थिक बोझ नहीं डालना चाहते थे। इसलिए उन्होंने घर-घर जाकर बच्चों को पढ़ाना आरंभ कर दिया। इस प्रकार प्राप्त धन से उनका किसी प्रकार गुजारा होने लगा। बच्चों को पढ़ाने के लिए उन्हें मीलों पैदल चलना होता था। पैदल चलने की यह आदत बाद में उनकी दिनचर्या का एक मुख्य भाग बन गई।

कालेज में विश्वेश्वरैया की गिनती मेहनती व मेधावी छात्रों में की जाती थी। उन दिनों सेन्ट्रल कालेज के प्रिन्सिपल चार्ल्स वाटर्स थे। उन्हें गणित में विशेष रुचि थी। चार्ल्स वाटर्स ने विश्वेश्वरैया को अद्भुत बुद्धि का छात्र पाया और उन्हें सभी प्रकार से प्रोत्साहित किया। कक्षा में पढ़ाते समय वह अक्सर विश्वेश्वरैया को गणित के कठिन सवाल हल करने के लिए बुलाते। एक बार विश्वेश्वरैया से खुश होकर चार्ल्स वाटर्स ने अपनी अंग्रेज़ी डिक्शनरी उन्हें भेंट कर दी। विश्वेश्वरैया ने इस भेंट को अपने जीवन के अन्तिम दिन तक सँभालकर रखा। चार्ल्स वाटर्स सेन्ट्रल कालेज से रिटायर होने के बाद इंग्लैण्ड लौट गए पर तब भी विश्वेश्वरैया उनसे संबंध साधे रहे। मृत्यु से पहले चार्ल्स वाटर्स अपनी पत्नी से कह गए कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी कमीज़ के सोने के बटन विश्वेश्वरैया को यादगार के रूप में दे दिये जाएँ। सभी जानते हैं कि सोने के ये बटन विश्वेश्वरैया को बहुत पसन्द थे और वे अक्सर उनका उपयोग करते थे।

विश्वेश्वरैया ने सन् 1880 में लगभग बीस वर्ष की आयु में बी.ए. की परीक्षा विशेष योग्यता के साथ पास की। उन दिनों मैसूर सरकार अपने मेधावी छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए बज़ीफ़े देकर दूसरे प्राँतों में भेजती थी। प्रिन्सिपल चार्ल्स वाटर्स की सिफारिश पर विश्वेश्वरैया को पूना में आगे पढ़ने के लिएं बज़ीफ़ा मिल गया। इस प्रकार विश्वेश्वरैया ने पूना के कालेज ऑफ साइंस में इंजीनियरिंग

शिक्षा के लिए प्रवेश लिया। इंजीनियरिंग का तीन वर्ष का पाठ्यक्रम उन्होंने केवल ढाई वर्ष में पूरा कर लिया और सन् 1883 में इंजीनियरिंग की परीक्षा में वह सर्वप्रथम रहे। उन्होंने **जेम्स बोर्कले** मैडल भी प्राप्त किया।

उन दिनों पूना विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आने वाले छात्र के लिए नौकरी की गारंटी रहती थी। इसलिए डिग्री मिलने के कुछ समय बाद ही विश्वेश्वरैया को बम्बई राज्य में सरकारी नौकरी मिल गई। उनकी पहली नियुक्ति नासिक जिले में की गई लेकिन कुछ दिनों बाद ही उनकी बदली खानदेश जिले में कर दी गई। जिसका सदर मुकाम धुलिया नगर में था।

बम्बई राज्य की सेवा में प्रवेश करने पर उनका सबसे पहला महत्त्वपूर्ण कार्य था पांजरा नदी की एक सहायक नदी के आर-पार पाइप साइफन लगाने का। इस काम को पूरा करने में विश्वेश्वरैया को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अभी चट्टानें काटने का काम चल ही रहा था कि बरसात शुरू हो गई। नदी में बाढ़ आ गई। खुदी हुई चट्टानों में फिर बालू भर गई। अब चट्टानें काटने के लिए हर दूसरे तीसरे दिन बालू हटाना होता था। विश्वेश्वरैया तब केवल 23 वर्ष के युवक थे। उनके लिए यह काम नया था। जब वे काफी परेशान हो गए तब उन्होंने सब-डिवीजनल आफिसर से परामर्श किया और उनकी सलाह पर काम रोक दिया। उन्होंने अपने एक्जीक्यूटिव इंजीनियर को लिख भी दिया कि बरसात के मौसम में इस काम को जारी रखने में बहुत अपव्यय होगा। लेकिन विश्वेश्वरैया को इसका उत्तर उनकी आशाओं के ठीक विपरीत मिला। उन्हें यह सरकारी ज्ञापन मिला जिसके द्वारा उन्हें यह आदेश दिया गया कि वे पाइप साइफन को लगाने का काम न रोकें। इसी ज्ञापन में एक टिप्पणी इस प्रकार थी, ''आदेशों के प्रति उत्साह और उनके परिपालन की दृष्टि से सहायक इंजीनियर अपनी जीवन-वृत्ति का श्रीगणेश बड़े भद्दे ढंग से कर रहे हैं''।

ज्ञापन पाकर विश्वेश्वरैया बहुत निराश हुए। उन्होंने सारे मामले पर विचार किया और काम फिर शुरू कर दिया। उन्होंने

एक्जीक्यूटिव इंजीनियर को इस बात की सूचना दे दी और उन्हें यह भी बतला दिया कि किफायत करने पर भी यदि अनुमानित व्यय से अधिक खर्च हो जाए तो उन्हें माफ किया जाए। कुछ ही महीनों में चट्टानें काटकर पाइप लगाने के काम में वे सफल हो गए। जब यह काम चल रहा था तब वे प्रतिदिन घोड़े पर चढ़कर काम देखने जाते थे। एक बार तो वे बाढ़ में ऐसे फँसे कि तीन दिन बाद ही घर लौट सके। इस बीच वे गाँव में रहे। गाँववालों ने उनका बहुत आदर सत्कार किया।

जब एक्जीक्यूटिव इंजीनियर को सूचना मिली कि पाइप साइफन लगाने का काम सफलतापूर्वक पूरा हो गया है तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने विश्वेश्वरैया के खिलाफ ज्ञापन में जो कुछ लिखा था उसे रद्द कर दिया। इस घटना का विश्वेश्वरैया के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसी एक्जीक्यूटिव इंजीनियर ने प्रसन्न होकर उन्हें विभागीय परीक्षा में बैठने के लिए प्रेरित किया। तब से उन्होंने हारनेवाली प्रवृति पूरी तौर पर छोड़ दी। परीक्षा पास करने पर उनकी नौकरी पक्की हो गई और उन्हें तरक्की भी मिल गई। अब उन्हें 500 रुपये मासिक वेतन मिलने लगा।

इस बीच मलेरिया के प्रकोप के कारण विश्वेश्वरैया का स्वास्थ्य खराब रहने लगा। उन्होंने स्थान परिवर्तन के लिए प्रार्थना की। फलस्वरूप उनकी बदली पूना जिले में कर दी गई। अब उन्हें सिंचाई व जल वितरण के काम को छोड़कर सड़कों व भवनों का काम सौंपा गया।

अभी पूना जिले में उन्होंने कुछ ही वर्ष बिताये होंगे कि सन् 1894 में उन्हें सिंध के सक्खर नगर में जाना पड़ा। सक्खर नगर में पीने का पानी सिंधु नदी से आता था। लेकिन सिंधु नदी का पानी सदैव गंदला व मटमैला रहता था। नगर में वितरण के पहले उसे छानना जरूरी होता था। उन दिनों सक्खर नगरपालिका के पास पानी साफ करने की टंकियाँ लगाने के लिए पर्याप्त धन न था। इसलिए विश्वेश्वरैया ने नदी तट के पास कुआँ खोदकर उसमें रिसनेवाला साफ पानी एकत्र करने का निश्चय किया। कुएँ में सदैव काफी पानी भरा रहे इसके लिए उन्होंने कुएँ की तली से नदी के नीचे तक सुरंग बिछाई। इस प्रकार

विश्वेश्वरैया ने सक्खर नगर के मटमैले पानी की समस्या का बड़ी कुशलता से समाधान किया। उनके कार्य की प्रशंसा करते हुए सक्खर नगरपालिका ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि श्री विश्वेश्वरैया ने सक्खर की कष्टदायक जलवायु को सहन करते हुए बड़ी सावधानी, योग्यता, उत्साह और आत्मत्याग की भावना से काम किया और थोड़े समय में वाटर-बर्मा का निर्माण किया। बम्बई सरकार ने भी विश्वेश्वरैया के इस काम की प्रशंसा की।

सक्खर से लौटने पर उन्हें सूरत जिले में नियुक्त किया गया लेकिन सन् 1897 तक वे फिर पूना लौट आए। अब उन्हें केन्द्रीय डिवीजन के चीफ इंजीनियर के सहायक के रूप में काम करना था। एक वर्ष बाद वे अपनी पहली विदेश यात्रा पर जापान गए। सन् 1899 में वे पूना में सिंचाई के कामों के लिए एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर बनाए गए। इस पद पर रहकर उन्होंने कुछ ऐसे कार्य कर दिखलाए जिससे उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने **सिंचाई की ब्लाक पद्धति** आरंभ की जिससे नहर के पानी की बरबादी रोकी जा सके।

सन् 1901 में बम्बई सरकार के सफाई इंजीनियर छुट्टी पर चले गए। तब विश्वेश्वरैया को अपने पद के साथ साथ सफाई इंजीनियर के काम को भी देखना पड़ा। इस बीच उन्होंने देखा कि खड़गवासला के लेक फाइफ जलाशय से मिलने वाला पानी पूना नगर की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता। इसलिए उन्होंने जलाशय पर ऐसे आश्चर्यजनक फाटक लगाए जिनकी मदद से उस जलाशय में 25 प्रतिशत पानी अधिक जमा होने लगा। ये 'स्वयं चालित फाटक अब **विश्वेश्वरैया फाटक** कहलाते हैं।

सन् 1904 में विश्वेश्वरैया की सफाई इंजीनियर के पद पर नियुक्ति स्थाई हो गई। वे इस पद पर चार वर्ष रहे। सन् 1906 में अदन बन्दरगाह की सैनिक छावनी में पीने के पानी की कमी थी। इस समस्या पर सुझाव देने के लिए विश्वेश्वरैया को वहाँ भेजा गया। उन दिनों अदन बन्दरगाह का प्रशासन बम्बई राज्य के अधीन था। अंग्रेज़ी साम्राज्य के लिए अदन का बहुत महत्त्व था। वहीं अंग्रेज़ी फौजें रहती थीं। समुद्र के खारे पानी को उबालकर तथा भाप को ठंडा करके जो

पानी मिलता था उससे सैनिक अपनी प्यास बुझाते थे। लेकिन यह काम बड़ा खर्चीला था। कहा जाता है कि एक गैलन पानी प्राप्त करने में तीन रुपये खर्च आता था। दूर-दूर तक मशक में पानी लाने पर भी एक डेढ़ रुपये प्रति गैलन खर्च हो जाता था। अदन पहुँचकर विश्वेश्वरैया ने वहाँ के आसपास के इलाकों का बारीकी से अध्ययन किया और इस समस्या को सुलझाने के लिए महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा, ''अदन से 97 किलोमीटर (60 मील) दूर उत्तर की ओर पहाड़ी इलाका है जहाँ काफी वर्षा होती है। वर्षा का पानी पहाड़ियों से नीचे बहकर एक नदी में मिल जाता है। बहुत-सी दूसरी नदियों की तरह इस नदी का पानी भी समुद्र तक नहीं पहुँच पाता और कुछ दूर जाकर, लहेज़ नामक स्थान पर नदी के रेतीले भाग में ही समा जाता है। एक तजबीज यह है कि नदी तल से बंद मुँहवाले जमींदोज कुएँ खोदकर उनमें पानी जमा किया जाए। फिर उसे पम्प करके पाइप द्वारा 29 किलोमीटर (18 मील) दूर अदन तक पहुँचाया जाए।'' अदन बन्दरगाह के लिए विश्वेश्वरैया द्वारा दी गई इस रिपोर्ट की इस सरकार ने बहुत प्रशंसा की। इस सफलता पर उन्हें एक मैडल भी दिया गया।

अदन से लौटने के बाद सन् 1907 में कुछ समय के लिए विश्वेश्वरैया तीन सुपरिण्टेंडिंग इंजीनियरों का उत्तरदायित्व एक साथ सँभाल रहे थे। अब वह उस सर्वोच्च पद पर पहुँच चुके थे जिसके आगे उन दिनों कोई भारतीय नहीं जा सकता था। अन्य इंजीनियरों की अपेक्षा विश्वेश्वरैया को पदोन्नति जल्दी मिली। एक समय तो लगभग अट्ठारह वरिष्ठ इंजीनियरों को पीछे छोड़कर वे आगे बढ़ गए। फिर भी विश्वेश्वरैया को यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि वे बम्बई राज्य की सेवा में रहते हुए कभी भी चीफ इंजीनियर नहीं बन सकते क्योंकि यह पद केवल अंग्रेज़ों के लिए सुरक्षित था।

विश्वेश्वरैया और बड़े-बड़े कार्य करना चाहते थे, किन्तु बम्बई प्रेसीडेन्सी की सेवा में उन्हें ऐसे अवसर प्राप्त होने की कोई आशा न थी। इसलिए धन, पद, ऐश्वर्य सभी छोड़कर उन्होंने सन् 1907 में राजकीय सेवा से त्यागपत्र दे दिया और स्वयं इटली, इंग्लैण्ड,

अमेरिका, कनाडा, स्वीडन, रूस आदि की यात्रा पर निकल पड़े। उन्हें इस बात की परवाह न थी कि उन्हें पेंशन भी मिलेगी या नहीं–पेंशन पाने के लिए उन्हें कम से कम बम्बई प्रेसीडेन्सी में दो वर्ष और नौकरी करनी थी। किन्तु विश्वेश्वरैया के मन में तो बड़ी-बड़ी योजनाएँ घूम रही थीं, उन्हें चैन कहाँ। वह अपने त्यागपत्र पर अडिग रहे। किन्तु उनकी सराहनीय सेवाओं को ध्यान में रखते हुए अंग्रेज़ी सरकार ने उन्हें पेंशन देना स्वीकार किया।

विदेश यात्रा के दौरान विश्वेश्वरैया को हैदराबाद राज्य के निज़ाम का एक तार मिला जिसमें उनसे यह प्रार्थना की गई थी कि वे हैदराबाद के लिए लोक कल्याण संबंधी कुछ योजनाएँ बनाएँ। अतः विदेश यात्रा से लौटकर विश्वेश्वरैया कुछ समय के लिए हैदराबाद चले गए। उन दिनों हैदराबाद में बड़ी विनाशकारी बाढ़ आई थी। उन्होंने बाढ़ के संबंध में तरह-तरह के सर्वे किए तथा भविष्य में बाढ़ रोकने के लिए आवश्यक उपाय बतलाए।

कुछ ही समय बाद विश्वेश्वरैया ने मैसूर राज्य के निमंत्रण पर चीफ इंजीनियर का पद सँभालने की स्वीकृति दे दी। चीफ इंजीनियर का पद स्वीकार करने से पहले उन्होंने राज्य सरकार से इस बात का आश्वासन ले लिया था कि उनकी योज़नाएँ पूरी करने में कोई उच्च अधिकारी अकारण ही बाधा नहीं डालेगा। इस प्रकार नवम्बर 1909 में विश्वेश्वरैया ने मैसूर राज्य के चीफ इंजीनियर का कार्यभार सँभाल लिया। इसके साथ ही उन्हें मैसूर राज्य का रेल सचिव भी नियुक्त किया गया। अब विश्वेश्वरैया ने तेजी से बड़े-बड़े कार्य करने का बीड़ा उठाया।

सर्वप्रथम विश्वेश्वरैया ने मैसूर राज्य में सिचाई और बिजली की समस्या पर ध्यान दिया। उन्होंने कृष्णराजा सागर डेम बनाने के लिए कठिन परिश्रम किया। उन्होंने मैसूर राज्य में रेलों का जाल बिछाने के लिए एक बड़ी योजना बनाई।

तीन वर्ष बाद ही 12 नवम्बर 1912 को विश्वेश्वरैया को मैसूर राज्य का दीवान बना दिया गया। इससे पहले राज्य के दीवान पद पर आई०सी०एस० अफसर ही नियुक्त होते थे। इस महत्त्वपूर्ण पद पर

एक इंजीनियर की नियुक्ति होने पर सरकारी क्षेत्रों में बड़ी खलबली मची। दीवान पद के रूप में उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बातें भी देखनी पड़ती थीं। लेकिन फिर भी समय निकालकर वे अपनी इंजीनियरिंग योजनाओं की प्रगति देखने अवश्य जाते। उन्होंने उच्च शिक्षा और इंजीनियरिंग शिक्षा पर बहुत जोर दिया। उनके प्रयासों से मैसूर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। देशी रियासतों में यह पहला विश्वविद्यालय था। विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों से मैसूर राज्य में रेशम, संदल के तेल, साबुन, धातु, चमड़ा रँगने आदि के कारखाने लगे। भद्रावती के लोहे व इस्पात कारखाने की योजना भी विश्वेश्वरैया के प्रशासन काल में ही बनी। उन्हीं के प्रयत्नों से अक्तूबर 1913 में बैंक ऑफ मैसूर की स्थापना हुई।

विश्वेश्वरैया ने अनेक प्रशासनिक सुधार भी किए। उन्होंने **कार्य कुशलता की जाँच** प्रणाली लागू की। इस नई प्रणाली को लागू करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इस बारे में उन्होंने बतलाया कि, ''हमारे राज्य में जहाँ सरकारी दफ्तरों में यूरोपीय ढंग से काम-काज चलता है और काम करनेवाले अपनी यूरोपीयन ढंग की आदतों को नहीं अपना पाए, वहाँ हिसाब-किताब की जाँच की तरह कार्य-कुशलता की जाँच भी आवश्यक है।''

सन् 1881 में अंग्रेज़ों ने महाराजा कृष्णराज वाडियार के पिता महाराजा चामराज वाडियार को जब रियासत का शासन प्रबन्ध सौंपा था तो इस शासन परिवर्तन की रस्म को **इंस्ट्रूमेन्ट ऑफ ट्रांसफर** कहा गया था। महाराजा कृष्णराज को इसके कुछ अंशों पर आपत्ति थी। वे अंग्रेज़ी सरकार से एक नई संधि करना चाहते थे। सन् 1913 में यह संधि हुई जिसके अनुसार मैसूर राज्य को आंतरिक मामलों के पूरे-पूरे अधिकार मिल गए। इस नई संधि को कराने में विश्वेश्वरैया ने बहुत योग दिया। इस संबंध में महाराजा ने 2 नवम्बर 1913 को एक पत्र विश्वेश्वरैया को लिखकर उनके कार्यों की सराहना इन शब्दों में की, ''वाइसराय का दौरा समाप्त होने के बाद मुझे अवसर मिला है कि आपने इंस्ट्रूमेन्ट ऑफ ट्रांसफर के सम्बन्ध में जो कार्य किया उसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद दूँ। मैं पूरी तरह समझता हूँ कि

वाइसराय के साथ बातचीत में जो मुझे सफलता मिली है उसमें आपका बड़ा हाथ था। आपने बड़े प्रभावशाली ढंग से अपना पक्ष रखा। इस प्रकार आपने मेरे और मेरे राज्य के प्रति जो सराहनीय कार्य किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। इसके लिए आभार प्रकट करने में भी असमर्थ हूँ। मुझे इस बात पर बड़ा हर्ष है कि आपने चार वर्षों के अल्प समय में, जब से आप यहाँ हैं, न केवल मैसूर के नाम को चार चाँद लगाए हैं बल्कि राज्य के अंदर और बहुत से महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। मैं आपको इस बात का विश्वास दिलाता हूँ कि राज्य के लिए आपने जो सेवा कार्य किए हैं, या कर रहे हैं, उन सबके लिए मैं बड़ा आभारी हूँ, और मेरी ओर से आपको हर तरह की सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त होती रहेगी।"

मैसूर रियासत में जब विश्वेश्वरैया बड़े-बड़े काम कर रहे थे तब उनके विरोधी तरह-तरह की अफवाहें फैलाने में लगे थे। कावेरी जलाशय और भद्रावती के कारखाने को लेकर कड़ी आलोचनाएँ होती थीं। सन् 1917-18 में मद्रास राज्य में गैर-ब्राह्मणों द्वारा किए आन्दोलन का प्रभाव मैसूर राज्य पर भी पड़ा। कुछ स्वार्थी लोगों ने इस समस्या को लेकर महाराजा और दीवान के बीच अविश्वास का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। फलस्वरूप अप्रैल 1918 में विश्वेश्वरैया ने महाराजा को कह दिया कि हाथ में ली गई योजनाओं का काम ठीक रास्ते पर लाकर मैं अवकाश ले लूँगा। 9 दिसम्बर 1918 को विश्वेश्वरैया ने दीवान पद छोड़ दिया। परिषद् भवन में विदाई के समय उन्होंने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने कहा, "मुझे आशा है कि यदि मैं इस बात का दावा करूँ तो आप मुझे क्षमा करेंगे कि दीवान पद ग्रहण करते समय मैंने जिन बातों को पूरा करने का बीड़ा उठाया था, परिस्थितियों के अनुसार जहाँ तक संभव हो सका, उन्हें पूरा करने के सभी प्रयत्न किए।......मुझे दुःख है कि मेरे लक्ष्य अधूरे ही रह गए। लेकिन मैं राज्य की जनता का बड़ा आभारी हूँ जिसने मुझे पूरा सहयोग दिया और गत छः वर्षों में एक भी ऐसी घटना नहीं घटी जिससे राज्य के प्रशासन को बट्टा लगता।"

विश्वेश्वरैया द्वारा की गई सेवाओं की सराहना करते हुए एक

असाधारण गजट प्रकाशित हुआ जिसमें कहा गया कि, "इस अवधि में सर विश्वेश्वरैया ने राज्य के भौतिक साधनों में वृद्धि करने के लिए बड़ी लगन और परिश्रम से कार्य किया। दीवान के रूप में उनके शासन प्रबन्ध द्वारा शिक्षा, सिंचाई कार्यों, रेल यातायात तथा उद्योग धंधों का भारी विकास हुआ। उन्होंने राज्य को प्रगति व समृद्धि के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। सर विश्वेश्वरैया जहाँ भी जाएँगे, राज्य के हर जाति के लोगों की तथा राज्य के महाराजा की शुभकामनाएँ सदा उनके साथ रहेंगी।"

दीवान का पद छोड़ने के बाद उन्हें आजादी थी कि वे कोई भी मनचाहा काम करें। उनका कार्य क्षेत्र अब और बढ़ गया। लोक कल्याण संबंधी समस्याओं पर सलाह देने के लिए भारत के कोने-कोने से बुलावे आने लगे। इंजीनियरिंग के अतिरिक्त उनसे प्रशासनिक मामलों में भी सलाह माँगी जाती। अपनी जानकारी नवीनतम रखने के लिए वे कई बार विदेश गए।

मैसूर राज्य से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी वे वहाँ के चुनौतीपूर्ण कार्यों में दिलचस्पी लेते रहे। सन् 1923 में उन्होंने भद्रावती के लोहे के कारखाने का अध्यक्ष बनना स्वीकार किया और एक डूबते को मुनाफे का सौदा बनाकर दिखलाया। कुछ वर्ष बाद उन्होंने बंगलौर के लिए पेयजल की योजना तैयार की। सन् 1927 में उन्होंने कृष्णराजा सागर बाँध से संबंधित नहरों और सुरंगों का काम पूरा किया।

उड़ीसा राज्य में समय-समय पर विनाशकारी बाढ़ें आया करती थीं। सन् 1937 की बाढ़ ने तो बड़ी तबाही मचाई। इन बाढ़ों से दुःखी होकर महात्मा गांधी ने विश्वेश्वरैया को एक पत्र लिखा। उनसे अनुरोध किया कि वे उड़ीसा जाकर बाढ़ की रोकथाम के लिए कोई सुझाव दें। सन् 1938 में वे उड़ीसा गए और महानदी के डेल्टे का गहन अध्ययन किया। उनकी रिपोर्ट के आधार पर ही बाद में हीराकुण्ड बाँध योजना बनाई गई।

देश में उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए विश्वेश्वरैया ने अखिल भारतीय निर्माता संघ की स्थापना की। सन् 1941 से 1954 तक वे इस

संघ के अध्यक्ष रहे। वे अनेक सरकारी व गैर सरकारी समितियों से जुड़े रहे। सन् 1922 में वे नई दिल्ली नगर निर्माण कमेटी के सदस्य बने। उसी वर्ष उन्हें सर्वदल प्रतिनिधि राजनैतिक कान्फ्रेंस की अध्यक्षता करने का भी मौका मिला। इस सभा में श्री मोहम्मद अली जिन्ना और पं० मदन मोहन मालवीय भी उपस्थित थे।

इस प्रकार लगभग 70 वर्षों तक विश्वेश्वरैया देश सेवा में लगे रहे। सन् 1960 में उनका जन्म शताब्दी समारोह बड़े धूमधाम से मनाया गया। सन् 1962 में इस महान् इंजीनियर का देहांत हो गया। अपने लम्बे जीवनकाल में उन्होंने जो बड़े-बड़े काम किए उनके बारे में आगे बतलाया गया है। □ □

आश्चर्यनक फाटक

बाँध बनाना कोई सरल कार्य नहीं। इसे बनाने के लिए बहुत धन व समय की आवश्यकता होती है। एक बार बाँध बना दिये जाने के बाद उसे फिर और ऊँचा उठाना संभव नहीं, क्योंकि नींव डालते समय यह बात पहले ही तय कर ली जाती है कि बाँध की अधिकतम ऊँचाई कितनी रखनी है।

प्रत्येक बाँध में बड़े-बड़े लोहे के फाटक होते हैं। जलाशय में जल का स्तर बहुत ऊपर उठ जाता है और वह अपनी चार-दीवारी तोड़कर बाहर निकलने को मचलता है, तब इंजीनियर इन फाटकों को आंशिक तौर पर या पूरे खुलवा देते हैं। इससे बाढ़ का जल बाँध को बगैर कोई नुकसान पहुँचाते सुनिश्चित ढंग से बाहर निकलता रहता है। इस प्रकार न तो बाँध पर अधिक जोर पड़ता है और न ही अचानक बाढ़ आती है।

विश्वेश्वरैया की दिलचस्पी प्रारंभ से ही नए-नए बाँध बनाने, सिंचाई सुविधाएँ बढ़ाने और शहरों में जल वितरण व्यवस्थाओं को सुधारने में रही थी। सन् 1899 में जब उन्हें पूना भेजा गया तब उन्होंने पूना में जल वितरण व्यवस्था बेहतर बनाने की बहुत कोशिश की। पूना नगर में गर्मी के दिनों में जल की बहुत कमी हो जाती थी।

पूना नगर की जल सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ एक जलाशय द्वारा पूरी की जाती थीं। इस जलाशय का नाम लेक फाइफ है। यह जलाशय पूना के पास खडकवासला झील पर बाँध बनाकर बनाया गया है। किन्तु गर्मी के मौसम में यह जलाशय सूख जाता था और बचे-खुचे जल से पूना नगर की माँगों को पूरा करना कठिन होता था। उधर बरसात में यह जलाशय लबालब भर जाता था और बाँध की

अधिकतम सीमा से लगभग ढाई मीटर (आठ फीट) ऊपर तक का जल यूँही बहा दिया जाता था। इसे देखकर विश्वेश्वरैया सोच में पड़ गए।

जलाशय में जल एकत्र करने की क्षमता बढ़ाने के लिए क्या किया जाए, यही बात विश्वेश्वरैया के मन में बार-बार उठ रही थी। स्पष्ट है कि बाँध को और ऊपर उठाना संभव नहीं था क्योंकि बाँध की नींव जितनी ऊँचाई के लिए धरी गई थी उसे ध्यान में रखते हुए ऐसा करना असंभव था। इसी समस्या पर विचार करते-करते एक दिन विश्वेश्वरैया को एक नई बात सूझी। उन्होंने सोचा कि क्यों न बाँध के ऊपर लोहे के बड़े-बड़े ऐसे फाटक लगा दिए जाएँ जिनकी सहायता से जलाशय में जल अधिक ऊँचाई तक एकत्र हो सके। इस प्रकार बरसात के मौसम में जल का स्तर पहले की अपेक्षा ढाईमीटर ऊपर तक रखा जा सकता था और जलाशय की क्षमता लगभग पच्चीस प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती थी। ढाई मीटर से अधिक जल स्तर बढ़ने पर इन फाटकों को अपने आप खुल जाना चाहिए था जिससे मुख्य बाँध को कोई नुकसान न हो।

विश्वेश्वरैया ने बहुत सोच-विचारकर इन फाटकों का डिजाइन व इन्हें लगाने की व्यवस्था बनाई। उन्होंने इन फाटकों को इस प्रकार बनाया कि वे बाढ़ के जल से स्वयं खुलते व बन्द होते थे। जब तक बाढ़ का जल स्तर पहले के जल स्तर की अपेक्षा केवल ढाई मीटर से अधिक न हो तब तक तो ये फाटक बन्द रहते थे किन्तु जैसे ही जल स्तर और बढ़ता था तो ये स्वयं ही खुल जाते थे।

विश्वेश्वरैया ने बाढ़ के जल से स्वचालित फाटक जो खडकवासला बाँध पर लगवाए, उनके कार्य करने का सिद्धान्त बहुत सरल है। इसे समझने के लिए कल्पना कीजिए कि किसी चेन की सहायता से एक घिरनी के एक ओर फाटक लटका है और दूसरी ओर एक भारी वजन। यदि इन दोनों के भार बराबर हुए तो वे एक दूसरे को साध लेंगे। अब कल्पना कीजिए कि भारी वजन जिधर लटक रहा है उधर खतरे की सीमा से जल स्तर ऊपर उठने पर बाढ़ का जल पहुँच जाता है। ऐसा होते ही भारी वजन जल में डूब जाएगा। यह हम सभी जानते हैं कि जल में डूबने पर वस्तुएँ हल्की पड़ जाती हैं। इसलिए बाढ़ का जल

पहुँचते ही भारी वजन हल्का पड़ जाएगा, फलस्वरूप वह फाटक को साध नहीं पाएगा। इसलिए फाटक नीचे उतर आता है और वजन ऊपर चढ़ जाता है। फाटक के नीचे उतरते ही बाँध का निकासी जल-द्वार खुल जाता है और फालतू जल बाहर बहकर निकलता है।

खडकवासला बाँध के लिए विश्वेश्वरैया ने कुल 88 फाटक बनवाए। इन्हें ग्यारह समूहों में बाँटा गया। प्रत्येक समूह में आठ फाटक थे—चार भारी और चार हल्के। प्रत्येक फाटक का साइज लगभग 3 मीटर × 2.5 मीटर (10 फीट × 8 फीट) था। विश्वेश्वरैया ने इन सभी फाटकों को अपनी देख-रेख में अपने ही देश में बनवाया और फिर चेनों और घिरनियों की सहायता से उन्हें योजनानुसार लटकवाए।

बाढ़ द्वारा चालित ये आश्चर्यजनक फाटक बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। ऐसे फाटकों को अब विश्वेश्वरैया फाटक कहते हैं। बाद में ऐसे फाटक ग्वालियर के तिगरा बाँध (मैसूर के कृष्णराजा सागर बाँध) आदि पर लगाए गए। खडकवासला बाँध पर ऐसे फाटक लगवाने के लगभग 45 वर्ष बाद जब विश्वेश्वरैया वहाँ गए तो उन्हें यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि तब भी वे फाटक भली प्रकार का काम कर रहे थे।

विश्वेश्वरैया ने अपने इन फाटकों का पेटेण्ट करवाया, किन्तु इनसे किसी भी प्रकार का आर्थिक लाभ लेने से साफ इंकार कर दिया।

नहर से पानी देने का नया तरीका

बड़ी मेहनत से तैयार की गई किसी योजना के बारे में साढ़े तीन सौ से अधिक सवाल पूछे जाएँ और फिर ठीक-ठीक जवाब पाने के बाद ही उसे लागू करने के लिए कहा जाए तो स्पष्ट है कि योजना बनानेवाले के मन में उसकी सफलता के बारे में कोई शक न रहा होगा। लेकिन योजना लागू करने पर सरकारी अफसरों का सहयोग न मिले और जनसाधारण भी उसका विरोध करे तो क्या होगा? ऐसे कठिन समय में योजना बनानेवाला यदि हताश होकर उसे छोड़ दे तो इसमें किसी को हैरानी नहीं होगी। लेकिन विश्वेश्वरैया की बात तो कुछ और ही थी। वह तो अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने बड़ी लगन से नहर के पानी बाँटने की जो योजना तैयार की थी पहले उसका विरोध हुआ लेकिन अन्त में उन्होंने उसे सफलतापूर्वक लागू करके दिखला दिया। इस योजना की सफलता पर बम्बई सरकार के एक वरिष्ठ सदस्य सर जॉन म्यूर मैकेन्जी ने सन् 1008 में लेजिस्लेटिव कौंसिल में कहा था, "नहर के पानी वितरण की नई व्यवस्था पूरी तौर पर सफल रही....। इसे बनाने का सारा श्रेय विश्वेश्वरैया को जाता है जो सभी भारतीय व यूरोपीय इंजीनियरों के बीच निस्संदेह योग्यतम अफसर हैं और जिनके साथ काम करने का मुझे भी अवसर व सम्मान मिला।" उस जमाने में किसी यूरोपीय अफसर का अपने अधीन किसी भारतीय अफसर की इतनी अधिक प्रशंसा करना और उसे अन्य यूरोपीय अफसरों की तुलना में बेहतर कहना एक बड़ी बात थी।

नहर के पानी वितरण की इस कहानी का आरंभ सन् 1899 से तब हुआ जब विश्वेश्वरैया को पूना क्षेत्र में सिंचाई व्यवस्था मजबूत करने का काम सौंपा गया। काम सँभालते ही, उन्हें यह देखकर बड़ी हैरानी

हुई कि लोग नहर के पानी का किस प्रकार मनमाने ढंग से इस्तेमाल करते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ को देखता था और उसे इस बात की परवाह न थी कि उसके पड़ोसी के खेत को पानी मिल रहा है या नहीं। नहर के पानी की खूब बरबादी होती थी। बड़े व प्रभावशाली लोग आवश्यकता से अधिक पानी ले लेते थे। इससे उनके खेतों में अधिक पानी की वजह से लाभ कम और नुकसान अधिक होता था। उधर दूसरी तरफ गरीब लोगों के खेत सूखे रह जाते थे।

पानी वितरित करने की कोई सुनिश्चित पद्धति न होने की वजह से सिंचाई विभाग के लोग भी परेशान थे। किस खेत को कितना पानी दिया जाए? इस पानी का हिसाब कैसे रखा जाए? सबसे बड़ी परेशानी तो यह थी कि पानी की माँग हर साल अलग रहती थी। किसी साल पानी कम बरसा तो सभी नहर का पानी चाहते, उधर कम वर्षा होने पर नहर में पानी भी घट जाता। ऐसी दशा में सिंचाई विभाग के लोग किसे पानी दें किसे न दें? कभी-कभी किसान अपने खेतों में बगैर किसी पूर्व सूचना के ऐसी फसलें लगा लेते जिन्हें पूरे साल पानी की जरूरत रहती है—ऐसी फसलें लगाने पर वह नहर का पानी माँगते। पर नहर वाले उन्हें कहाँ से पानी दें। इन बातों से यह स्पष्ट हो गया था कि नहर के पानी को बाँटने के लिए किस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता है। इसलिए भारतीय सिंचाई कमीशन के अध्यक्ष कॉलिन स्कॉट मान्क्रिफ ने नहरों से सिंचाई करने की व्यवस्था को अधिक लाभदायक बनाने के लिए नए-नए सुझाव माँगे। उन दिनों विश्वेश्वरैया केवल एक एक्जीक्यूटिव इंजीनियर ही थे,पर उन्होंने तय किया कि वह एक योजना कमीशन को अवश्य भेजेंगे।

उन्होंने नहरों व खेतों का दौरा किया। किसानों की आवश्यकताओं और कठिनाइयों का पता लगाया। फिर बहुत सोच-विचारकर उन्होंने एक योजना बनाई। बाद में इस योजना को सिंचाई की **ब्लाक पद्धति** कहा गया। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य नहर के पानी की बरबादी रोकना था। नहर का पानी यदि किफायत से बाँटा जाए तो स्पष्ट है कि अधिक लोग सिंचाई से लाभ उठा सकते हैं।

सिंचाई की ब्लाक पद्धति लागू करने के लिए सिंचाई करनेवाले

किसानों से कहा गया कि वे मिलकर अपना-अपना ब्लाक बना लें। उन्होंने सरकार की तरफ से किसानों को इस बात की गारंटी दी कि प्रत्येक ब्लाक को एक निश्चित दर पर पानी मिलता रहेगा। किस ब्लाक के भीतर पानी का बँटवारा कैसे किया जाए, इसमें सरकार कोई दखल नहीं देगी। लेकिन ब्लाक बनाते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक था कि उसमें एक-तिहाई भाग से अधिक हिस्से में गन्ने जैसी बारहमासी फसलें न हों। बाकी दो-तिहाई हिस्से में सब्जी या मौसमी फसलें हों जिन्हें फरवरी के अन्त तक रखा जा सकता है। फरवरी के बाद प्रत्येक ब्लाक में नहर के पानी की मात्रा कम कर दी जाएगी व केवल उतना ही पानी दिया जाएगा जो ब्लाक के उस एक-तिहाई भाग के लिए पर्याप्त हो जहाँ बारहमासी फसलें खड़ी हैं। यदि कोई ब्लाक गारंटी से अधिक पानी की माँग करता है तो उसे अधिक मात्रा तब ही दी जा सकती है जबकि नहर में फालतू पानी हो।

जब विश्वेश्वरैया ने ब्लाक सिंचाई पद्धति लागू करने के लिए अपने सुझाव भारतीय सिंचाई कमीशन को भेजे तो अपनी स्वीकृति देने से पहले कमीशन ने लगातार तीन दिनों तक विश्वेश्वरैया से 358 सवाल पूछे। संतोषजनक उत्तर आने पर ही कमीशन ने इन शब्दों में नई पद्धति को स्वीकृति दी, "हमें बम्बई सरकार द्वारा भेजा गया व श्री विश्वेश्वरैया द्वारा लिखा गया एक दिलचस्प व सुन्दर प्रपत्र मिला है जिसमें उन्होंने दीर्घकालीन पट्टे की ब्लाक पद्धति के बारे में विस्तार से बतलाया है। यह प्रस्तावित योजना बहुत सोच समझकर तथा सभी बातों को ध्यान में रखकर बनाई गई लगती है। ...इस प्रकार की कोई योजना यदि हम दक्खिन के किसी सिंचाई क्षेत्र में लागू करें तो उसका लाभ जनता को तो मिलेगा ही, साथ ही सरकार की आय भी बढ़ेगी। इसलिए, हम श्री विश्वेश्वरैया द्वारा प्रस्तावित योजना को जाँचने के लिए कहीं जल्द लागू करना चाहते हैं।"

प्रस्तावित पद्धति सर्वप्रथम बम्बई प्रदेश में नीरा नहर पर लागू की गई। इसे लागू करने की सारी जिम्मेदारी विश्वेश्वरैया को सौंपी गई। उन दिनों इस क्षेत्र के कलेक्टर व सब-डिवीजनल अफसर, दोनों अंग्रेज़ थे। उन्होंने इस नई पद्धति को लागू करने में ज़रा भी सहयोग न

दिया। वहाँ के मामलातदारों और राजस्व विभाग के अन्य कर्मचारियों ने कुछ समय तक उनका साथ न दिया। उधर किसान भी नई पद्धति से खुश न थे। पर फिर भी विश्वेश्वरैया ने बड़ी कुशलता से इसे लागू किया। उन्होंने पहले उन अफसरों के विरुद्ध प्रमाण एकत्र किए जो नई पद्धति के मार्ग में रोड़े बिछा रहे थे। फिर इन प्रमाणों सहित ऐसे अफसरों की शिकायत की। विश्वेश्वरैया की शिकायत पर सरकार ने तुरन्त ध्यान दिया और सभी अफसरों को हिदायत दी कि वे नई पद्धति लागू करने में विश्वेश्वरैया को सहयोग दें। इस प्रकार नई पद्धति के बारे में अफसरों के रवैये में आशा के अनुसार परिवर्तन आया।

किसानों से निपटने के लिए विश्वेश्वरैया को कुछ समय पहले का अपना अनुभव बहुत काम आया। तब नहर के पानी की बरबादी रोकने के लिए पूना क्षेत्र में पानी पर नियन्त्रण लगा दिया गया था। किसानों को बारी-बारी से दस-दस दिनों बाद पानी मिलता था। इस पर किसानों ने आन्दोलन किया था। लोकमान्य तिलक का प्रभावशाली समाचार पत्र **केसरी** इस आन्दोलन का समर्थन कर रहा था। ऐसे कठिन समय में विश्वेश्वरैया ने पूना के फर्ग्यूसन कालेज में किसानों व उनके नेताओं की एक सभा बुलाई थी। इस सभा में उन्होंने पानी पर नियन्त्रण लगाने के कारण व लाभ बतलाए थे। विश्वेश्वरैया की दलीलें सुनकर सभी ने उनकी योग्यता की दाद दी थी व नई पद्धति का विरोध बन्द कर दिया। अपने इस अनुभव के आधार पर विश्वेश्वरैया ने नीरा नहर से सम्बन्धित सभी लोगों को पहले ही ब्लाक पद्धति के लाभ बतला दिए। फिर उस क्षेत्र के कुछ प्रभावशाली किसानों को अपने साथ लेकर इस पद्धति को लागू किया। इससे नई पद्धति का विरोध कम हुआ और शीघ्र ही सभी लोगों ने इसे खुशी से स्वीकार कर लिया।

बाद में देश के अनेक भागों में इस पद्धति को लागू किया गया।

□ □

5. हैदराबाद में बाढ़

हैदराबाद शहर के बीच मूसी नदी बहती है। 28 सितम्बर 1908 को इस नदी में भयंकर बाढ़ आई। कहा जाता है कि पिछली एक शताब्दी में ऐसी बाढ़ पहले कभी न आई थी। इस बाढ़ से हजारों लोग बह गए। सड़कें टूट गईं, पुल बह गए, बाँधों में दरारें पड़ गईं। सारा शहर तहस-नहस हो गया। सरकार चिंतित हो उठी। भविष्य में बाढ़ से फिर ऐसी तबाही न हो इसके लिए कुछ उपाय करने आवश्यक थे। टूटे-फूटे हैदराबाद शहर में नए सिरे से फिर जनसुविधाएँ जुटानी थीं। इन सभी बातों के लिए सरकार को एक कुशल इंजीनियर की आवश्यकता थी। इसलिए हैदराबाद सरकार ने भारत सरकार से किसी योग्य इंजीनियर की सेवाएँ प्राप्त करने का निश्चय किया। काफी सोच विचार के बाद इस काम के लिए विश्वेश्वरैया को पसंद किया गया।

उन दिनों विश्वेश्वरैया भारत में नहीं थे। समय से पहले सेवा निवृत्त होने का प्रार्थना पत्र देकर वे विदेश यात्रा पर निकल पड़े थे। सेवा निवृत्त होने से पहले सरकारी कर्मचारियों को जो छुट्टियाँ मिलती हैं, उनका वह लाभ उठा रहे थे, इसलिए प्रशासनिक तौर पर वे तब भी बम्बई के अधीन थे। अपनी विदेश यात्रा के दौरान जब वे इटली में थे, तब उन्हें लंदन के इण्डिया ऑफिस के उप-सचिव का एक पत्र मिला जिसमें बम्बई सरकार द्वारा भेजे गए एक तार का संदेश इस प्रकार था–

"हैदराबाद को फिर से बनाने और जल निकास की योजना तैयार करने के लिए निज़ाम सरकार सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर विश्वेश्वरैया की सलाह और सहायता चाहती है। हम उन्हें भेजने को तैयार हैं। ......क्या आप मालूम करेंगे कि वह इस काम के लिए जल्द भारत लौट

सकेंगे।.... यह काम बहुत ज़रूरी है।"

इस पत्र के उत्तर में विश्वेश्वरैया ने उप-सचिव को लिखा कि वह यह अनुरोध इस शर्त पर मानने को तैयार हैं कि वह लगभग पाँच महीने यूरोप, अमेरिका, रूस और कनाडा की अपनी प्रस्तावित यात्रा पूरी करने के बाद ही हैदराबाद को कुछ समय दे सकेंगे। हैदराबाद सरकार की सेवा स्वीकार करने से पहले उन्होंने एक शर्त और रखी। उन दिनों यूरोपीय अफसरों की तुलना में भारतीय अफसरों को कम वेतन मिलता था। विश्वेश्वरैया इस तरह के भेदभाव के सख्त विरोधी थे। इसलिए उन्होंने माँग की कि उन्हें मालगुजारी डिवीजन के कमिश्नर के ओहदे के बराबर वेतन दिया जाए। जब विश्वेश्वरैया की यह माँग भी स्वीकार कर ली गई तब अनेक लोगों ने उन्हें इस बात पर जोरदार बधाई दी कि उन्होंने इस माँग द्वारा भारतीय अफसरों व इंजीनियरों की प्रतिष्ठा बढ़ाई। इस प्रकार 15 अप्रैल 1909 को उन्होंने हैदराबाद राज्य में इंजीनियरिंग कामों के लिए प्रमुख सलाहकार का पद सँभाल लिया।

हैदराबाद पहुँचकर विश्वेश्वरैया ने सबसे पहले सितम्बर 1908 में आई बाढ़ के बारे में पूरी बातों का पता लगाया। उन्होंने निज़ाम सरकार को इस बारे में एक रिपोर्ट भी दी जिसमें इस भयंकर बाढ़ के सम्बन्ध में विस्तार से बतलाया गया है। इस रिपोर्ट को पढ़कर विनाशकारी बाढ़ का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। इसमें बाढ़ आने से दो-तीन दिन पहले हुई मूसलाधार वर्षा का पूरा विवरण, बाढ़ के चढ़ने व उतरने के दृश्य, पुलों के डूबने और बाँधों में दरार पड़ने की सारी बातें दी गई हैं।

विश्वेश्वरैया द्वारा प्रस्तुत इस रिपोर्ट को पढ़कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे अपनी रिपोर्ट कितनी बारीकी से तैयार करते थे। कोई भी बात उनकी पैनी दृष्टि से नहीं छूटती थी। इस रिपोर्ट में विश्वेश्वरैया ने कहा–

"26 और 27 सितम्बर 1908 की मूसलाधार वर्षा का कारण चक्रीय तूफान था। इसी वर्षा के कारण मूसी और ईसी नदियों में बाढ़ आई। शनिवार की सुबह कुछ वर्षा हुई पर दोपहर भर पानी नहीं

बरसा। रात्रि 11.30 बजे से सवेरे तक लगातार पानी बरसता रहा। इतवार की सवेरे 8 बजे तक लगभग 15 सेमी० (6 इंच) पानी बरस चुका था।"

"इतवार के दिन रुक-रुककर कभी तेज, कभी धीमी वर्षा होती रही। आधी रात बादल फट जाने से दूर-दूर के इलाकों में तेज़ वर्षा हुई। यह वर्षा कितनी तेज़ थी, उस बारे में कोई आंकड़े नहीं हैं तो भी सभी बातों से स्पष्ट है कि ऐसी भारी वर्षा कभी-कभी ही होती है। इस वर्षा से पहले ही ताल-तलैया पूरी तरह भरे थे व धरती गीली थी। ऐसे समय भारी वर्षा से नदी व जलाशयों में बाढ़ आ गई।"

"जलाशयों के बाँध एक के बाद एक टूटते गए। सर्वाधिक वर्षा शमशाबाद में हुई। वहाँ सोमवार की सुबह तक पिछले 24 घंटों में लगभग 32.5 सेमी० (12.80 इंच) वर्षा रिकार्ड की गई।.... फलस्वरूप सवेरे 4.30 बजे पल्मकोल जलाशय के बाँध में दरार आ गई। लगभग आधे घण्टे बाद यही हाल पर्ती जलाशय का भी हुआ। इन जलाशयों के बाँध टूटने से बहुत अधिक मात्रा में पहले से भरी नदी में पानी आ गया। नदी और जलाशयों का पानी घाटी में अनियन्त्रित ढंग से पुलों, मकानों और शहर के परकोटा को तोड़कर फैलता गया।"

"इतवार की सुबह 6 बजे तक नदी में केवल 1.2 मीटर (4 फीट) पानी था। लेकिन सुबह 10 बजे तक यह स्तर लगभग 6 मीटर (20 फीट) तक हो गया। दोपहर 12 बजे तक पानी कोलसावड़ी के मकानों में घुस गया।"

"आधी रात अर्थात् सोमवार की सेवेरे 2 बजे खतरे का पहला संकेत मिला। तब पानी पुराने पुल तक पहुँच चुका था और आधी रात लगभग 3 बजे तक शहर की पश्चिम की दीवार तोड़ चुका था। सुबह लगभग 7 बजे तक बाढ़ ने सहसा खतरनाक मोड़ ले लिया। मुख्य धारा दो शाखाओं में बँट गई और नदी के दोनों ओर आबादी वाले इलाकों में पानी फैल गया।....लगभग 11 बजे तक बाढ़ अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँची। नदी की साधारण चौड़ाई लगभग 210 मीटर (700 फीट) रहती थी, लेकिन तब तक लगभग सवा किलोमीटर

(तीन-चौथाई मील) की चौड़ाई में पानी फैल चुका था। शहर के विभिन्न क्षेत्रों में बाढ़ की अधिकतम ऊँचाई लगभग 11.5 मीटर से 13.75 मीटर (38 फीट से 45 फीट) तक थी।"

"11.30 बजे तक बाढ़ ने जो नुकसान करना था, कर दिया। दोपहर 11.45 से बाढ़ उतरने के आसार नज़र आए।... दोपहर के लगभग 3-4 बजे तक पानी अपने किनारों तक सिमट गया था।"

विश्वेश्वरैया ने अपनी रिपोर्ट में बाढ़ आने के सभी कारणों को बतलाया। इन्हें जाने बिना बाढ़ रोकने के उपाय सुझाना व्यर्थ था। बाढ़ से हुए नुकसान के बारे में भी विश्वेश्वरैया ने विस्तार से बतलाया। शहर के चारों पुल पानी में डूब गए थे और उनकी दीवारें बह गई थीं। लगभग तीन-चार घण्टों में ही बहुत से मकान गिर गए। यह कहा जाता है कि कोलसावड़ी में घिरे हुए लगभग दो हजार लोग बह गए। लगभग इतने ही लोग ग्यासी मियाँ बाजार में बह गए। बाढ़ का जायज़ा लेने व उससे बचने के लिए सैकड़ों लोग पेटला बुर्ज के पास की दीवार पर चढ़ गए थे, वे सभी दीवार गिरने से पानी में डूब गए।

नदी के उत्तरी भाग के लगभग ढाई वर्ग किलोमीटर के घनी आबादी के क्षेत्रफल में और दक्षिणी ओर के लगभग सवा वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में विनाश का जो दृश्य उपस्थित हुआ वैसा शायद कहीं देखा न हो। लगभग उन्नीस हजार मकान ढह गए और अस्सी हजार लोग बेघर-बार हो गए। बाढ़ द्वारा तीन करोड़ रुपये के माल का नुकसान हुआ। विश्वेश्वरैया ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया कि 221 तालाबों के बाँध टूटने से जल प्लावन का जैसा दृश्य उपस्थित हुआ वैसा पहले कभी न हुआ था।

विश्वेश्वरैया ने बाढ़ आने के सभी कारणों का पता लगाया। बाढ़ समस्या के इंजीनियरिंग पक्ष की छानबीन के बाद उन्होंने उसे रोकने के उपाय भी बतलाए। हैदराबाद शहर के पुनः निर्माण के लिए उन्होंने एक विस्तृत योजना बनाई। इस योजना में आधुनिक भूगर्भ नालियों की व्यवस्था के अलावा नदी के तटों को ऊँचा कराने का प्रस्ताव भी था। नदी के तटों को उद्यानों से सुसज्जित करने के सुझाव भी विश्वेश्वरैया ने दिए। नदी में अपनी क्षमता से अधिक पानी आ

जाने पर उसे संचित करने के लिए विश्वेश्वरैया ने सुझाया कि नदी के मार्ग में दो नए जलाशय बनाए जाएँ—एक मूसी नदी पर और दूसरा उसकी सहायक ईसी नदी पर।

अक्तूबर 1909 तक विश्वेश्वरैया ने अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली। फिर इसे छपाकर निज़ाम सरकार को दे दी। निज़ाम सरकार ने रिपोर्ट पर गंभीरतापूर्वक विचार तो किया, लेकिन कोई निर्णय न लिया।

विश्वेश्वरैया ने हैदराबाद में बाढ़ रोकने के लिए जो योजना बनाई वह एक बड़ी योजना थी। उस जमाने में यह समझा जाता था कि बड़ी-बड़ी योजनाएँ केवल यूरोपीय इंजीनियर ही बना सकते हैं, भारतीय इंजीनियर नहीं। इसलिए विश्वेश्वरैया द्वारा बनाई योजना पर अमल करने से पहले निज़ाम सरकार किसी विख्यात यूरोपीय इंजीनियर की सलाह चाहती थी। अतः विश्वेश्वरैया की योजना को मद्रास सरकार के प्रसिद्ध इंजीनियर श्री वी० रोसको ऐलन के पास भेजा गया। रिपोर्ट पढ़ने के बाद श्री ऐलन ने अपनी सलाह इस प्रकार दी—"पहले तो मैं हैदराबाद को इस बात के लिए बधाई देता हूँ कि उसने एक बड़े दुर्भाग्य को एक निश्चित वरदान में बदल देने वाला कदम उठाने की बुद्धिमत्ता की और दूसरे इस बात पर कि उसने इस काम के लिए एक उपयुक्त इंजीनियर को चुना। बिना किसी हेर-फेर के मैं इस योजना को जल्द लागू करने की जोरदार सिफारिश करता हूँ। जहाँ तक डिजाइनों का प्रश्न है, वे वैसे ही हैं जैसे उन्हें बनानेवाले प्रतिभाशाली इंजीनियर से आशा की जा सकती थी।"

बाढ़ रोकथाम योजना के अलावा विश्वेश्वरैया ने हैदराबाद के लिए दो योजनाएँ और बनाईं। एक योजना हैदराबाद में भूगर्भ नालियों से सम्बन्धित थी तो दूसरी योजना हैदराबाद को फिर से बनाने के सम्बन्ध में थी। नवम्बर 1909 तक विश्वेश्वरैया ने यह दोनों काम निपटा दिए और निज़ाम सरकार को छपी छपाई रिपोर्ट दे दी। लेकिन निज़ाम सरकार ने इन योजनाओं को पूरी करने में उतनी दिलचस्पी नहीं ली जितनी उसने विश्वेश्वरैया को हैदराबाद बुलाने में ली थी। हैदराबाद में अपना काम पूरा करने के बाद विश्वेश्वरैया मैसूर चले गए जहाँ उन्होंने 15 नवम्बर 1909 को मैसूर राज्य में इंजीनियर पद

सँभाल लिया।

विश्वेश्वरैया की इन योजनाओं को काफी समय बाद धीरे-धीरे लागू किया गया। मूसी नदी पर बाँध बनाने का काम लगभग साढ़े तीन साल बाद अर्थात् सन् 1913 में हाथ में लिया गया और भूगर्भ नालियों को बनाने का काम लगभग दस वर्ष बाद। निज़ाम सरकार के आमन्त्रण पर जब सन् 1922 में विश्वेश्वरैया हैदराबाद गए तो उन्होंने देखा कि ईसी नदी पर उनके द्वारा सुझाए गए जलाशय का काम तब भी चल रहा था। नालियाँ बिछाने का काम तो और भी धीमी गति से हो रहा था। इस यात्रा के दौरान विश्वेश्वरैया ने हैदराबाद और सिकन्दराबाद शहरों की गन्दी बस्तियों के बारे में भी सुझाव दिए। हैदराबाद में लोक कल्याण की योजनाओं को पूरी कराने के लिए विश्वेश्वरैया ने हैदराबाद की आधी दर्जन यात्राएँ कीं। मूसी नदी पर बाढ़ रोकने के उद्देश्य से बने जलाशय से हैदराबाद शहर को पीने का पानी देने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों और दूरदर्शिता से न केवल मूसी नदी की बाढ़ को रोका जा सका, वरन् उसे अच्छे उपयोग में भी लाया जा सका।

सन् 1930 में विश्वेश्वरैया को फिर से गन्दी बस्तियों को हटाने और शहर को साफ व सुन्दर बनाने के लिए आमन्त्रित किया गया। आज हैदराबाद शहर में जो धूल रहित सड़कें, आलीशान इमारतें, प्रभावशाली जल निकास व्यवस्था, पगडंडियाँ और फुटपाथ, खुली जगहें, बाग-बगीचे और पीने के पानी में कोई दिक्कत नहीं है तो इन सबके लिए काफी हद तक विश्वेश्वरैया की दूरदर्शिता ही जिम्मेदार है। □ □

कृष्णराजा सागर बाँध

भला किसने मैसूर के वृन्दावन गार्डन का नाम नहीं सुना होगा। रंग-बिरंगे फव्वारों और सुन्दर महकते फूलों से लदे इस उद्यान की छटा निराली है। चाँदनी रात में इसे देखने पर लगता है कि हम किसी स्वप्न लोक में आ गए। अनेक फिल्मों में इस उद्यान के दृश्य फिलमाए गए हैं। यह प्रसिद्ध उद्यान कृष्णराजा सागर बाँध के निचले भाग में है। कृष्णराजा सागर बाँध एक दर्शनीय स्थल है। दूर-दूर तक फैला पानी झील जैसा दृश्य उपस्थित करता है। बाँध पर से गिरते पानी की बूँदें न जाने कितने तुषार-कणों में बिखरकर धवल बादल जैसा अद्भुत दृश्य बनाती हैं जिसे लोग घंटों निहारते नहीं थकते। प्रतिदिन न जाने कितने पर्यटक वृन्दावन गार्डन और कृष्णराजा सागर बाँध देखने आते हैं, पर कितनों को पता है कि इन्हें बनाने का अधिकांश श्रेय विश्वेश्वरैया को जाता है। सन् 1927 में महात्मा गाँधी ने इसे देखकर सच ही कहा था कि केवल कृष्णराजा सागर बाँध ही, सर विश्वेश्वरैया का नाम अमर करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन कृष्णराजा सागर बाँध और वृन्दावन गार्डन बनाने के लिए विश्वेश्वरैया को किस प्रकार प्रकृति और लोगों से जूझना पड़ा, यह कहानी भी किसी रोमांचक कहानी से कम नहीं है।

इस बाँध की कहानी कहने से पहले यह बतलाना उचित होगा कि अपने निर्माणकाल तक यह बाँध भारत का सबसे बड़ा बाँध था। मैसूर से यह बाँध लगभग 19 किलोमीटर दूर है। इस बाँध द्वारा कावेरी नदी के पानी को रोका गया है। इस प्रकार रोके गए पानी से एक बहुत बड़ी झील बन गई है। बाँध बहुत ऊँचा और काफी लम्बा है। इसके ऊपर एक साफ-सुथरी चौड़ी सड़क भी है जिस पर मोटरगाड़ियाँ आ-जा सकती हैं। इस बाँध को बनाने का काम उन दिनों आरंभ हुआ जिन

दिनों मैसूर राज्य के चीफ इंजीनियर विश्वेश्वरैया थे। इतने लम्बे-चौड़े बाँध को सफलतापूर्वक बनाकर विश्वेश्वरैया ने यह दिखला दिया कि बड़े-बड़े बाँध बनाने में भारतवासी भी किसी से कम नहीं हैं।

कावेरी नदी पर कृष्णराजा सागर बाँध बन जाने से एक लाख एकड़ से भी अधिक भूमि पर सिचाई संभव हुई। सिचाई के लिए बड़ी-बड़ी नहरें खोदी गईं। एक नहर तो पहाड़ों को काटकर, सुरंग के भीतर बनाई गई। सिचाई के लिए बनी भारत की कदाचित यह सबसे लम्बी नहर होगी। सिचाई सुविधाएँ मिलने के फलस्वरूप मैसूर राज्य में खेतीबाड़ी की बहुत उन्नति हुई। अधिक पानी की माँग करनेवाली फसलें भी किसान बगैर किसी डर के लगाने लगे। फलस्वरूप वीरान रहनेवाली धरती पर गन्ने के खेत लहलहाने लगे। बाँध द्वारा रोके पानी से बिजली भी बनाई गई। सच बात तो यह है कि कोलार खदानों के लिए बिजली बनाना ही इस योजना का मुख्य उद्देश्य था। लेकिन विश्वेश्वरैया ने सारी योजना इस प्रकार बनाई कि कोलार स्वर्ण खदानों को बिजली देने के बाद भी काफी बिजली बची रहे। बची हुई बिजली मैसूर, बंगलौर तथा अनेक कस्बों को दी गई। इसके बाद भी बची फालतू बिजली से अनेक उद्योग स्थापित किए गए। गन्ने की खेती बढ़ जाने और बिजली सरलता से मिल जाने के फलस्वरूप राज्य में अनेक चीनी मिलें लगाई गईं। सूती कपड़ों व रुई की अनेक मिलें भी स्थापित हुईं। चारों तरफ खुशहाली फैल गई। कावेरी नदी की इस योजना को अमेरिका की टैनीसी वैली अथोरिटी का एक छोटा रूप कहा जा सकता है। टैनीसी वैली योजना की तरह यह भी एक बहुमुखी नदी योजना थी। लेकिन जिन दिनों विश्वेश्वरैया इस योजना को बना रहे थे उन दिनों तक भारत में बहुमुखी नदी योजनाओं की कोई कल्पना न थी। इस कारण विश्वेश्वरैया की इस बहुमुखी नदी योजना का डंटकर विरोध हुआ। किन्तु विश्वेश्वरैया को अपने पर भरोसा था। वे विरोध का सामना करते रहे। विजय अन्त में उन्हीं की हुई। इस प्रकार भारत में सर्वप्रथम बहुमुखी नदी योजना बनाने का श्रेय मिला विश्वेश्वरैया को।

कृष्णराजा सागर बाँध बनाने का विचार तब आया जब मैसूर सरकार कोलार स्वर्ण खदानों को एक करार के अनुसार बिजली देने में असफल रही। मैसूर राज्य ने सन् 1902 में शिवसमुन्द्रम् झरने पर भारत का पहला जल-बिजलीघर लगाया था। राज्य सरकार को आशा थी कि इस जल-बिजलीघर से खूब बिजली पैदा होगी। इसलिए राज्य सरकार ने कोलार स्वर्ण खदानों को काफी बिजली देने का समझौता किया। लेकिन दुर्भाग्य से यह जल-बिजलीघर उतनी बिजली पैदा न कर सका जितनी आशा थी। गर्मी के मौसम में तो पानी इतना कम रह जाता था कि बिजली बनाना मुश्किल हो जाता था। इस कारण कोलार स्वर्ण खदानों को करार के अनुसार बिजली नहीं मिल पा रही थी। फलस्वरूप मैसूर सरकार को हर्जाना देना पड़ रहा था, जिससे वह चिन्तित थी।

इसी बीच कोलार स्वर्ण खदानों के प्रबन्धकों ने सूचना दी कि यदि मैसूर सरकार बिजली देने की स्थिति में नहीं है तो वे अपना बिजलीघर स्वयं लगा लेंगे। उन्होंने आगामी पाँच वर्षों तक डेढ़ गुनी बिजली की माँग की। पाँच वर्षों के बाद वे दुगुनी बिजली चाहते थे। भला मैसूर सरकार इतनी बिजली कहाँ से देती? लेकिन इतने अच्छे प्रस्ताव को ठुकरा देना भी मैसूर सरकार के लिए सरल बात न थी। उन दिनों विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य में चीफ इंजीनियर थे और साथ ही वे बिजली विभाग के सचिव भी थे। कोलार स्वर्ण खदानों के प्रबन्धकों की माँग पर विचार करने पर उन्हें अपने सपने पूरा करने का एक सुनहरा अवसर दिखा। विश्वेश्वरैया ने अपनी विदेश यात्रा के दौरान मिश्र का प्रसिद्ध आसवन बाँध देखा था। बम्बई और हैदराबाद राज्यों के लिए बड़े-बड़े बाँध सुझाने का उन्हें पहले ही काफी अनुभव था। अपने इस अनुभव के आधार पर उन्होंने कावेरी नदी पर एक बहुत बड़ा जलाशय बनाने की बात सोची जिससे बहुत बड़े इलाके में सिंचाई की जा सके और साथ ही बहुत अधिक मात्रा में बिजली भी बनाई जा सके। विश्वेश्वरैया के बिजली विभाग के चीफ इंजीनियर श्री एच० पी० गिब्स से तुरन्त बातचीत आरंभ की। यह तय हुआ कि मैसूर से लगभग 19 किलोमीटर दूर कन्नमबाड़ी गाँव के पास कावेरी नदी पर

बाँध बनाकर एक बड़ा जलाशय बनाया जाए। इस जलाशय के पानी से बहुत बड़े इलाके में सिंचाई करने की आशा थी। बिजली पैदा करने के लिए यह तय हुआ कि एक जल-बिजलीघर शिवसमुन्द्रम् पर व दूसरा शमशा पर लगाया जाए। विस्तृत योजना बनाने के लिए सर्वेक्षण का काम तेजी से किया गया। बहुत थोड़े समय में सारी योजना बना ली गई और सरकार को भेज दी गई।

कावेरी नदी की इस योजना को पूरा करने पर 253 लाख रुपये खर्च आने का अनुमान था। लेकिन उन दिनों मैसूर सरकार की कुल आमदनी केवल 223 लाख रुपये थी। जब यह योजना राज्य के वित्त विभाग के पास भेजी गई तो वित्त विभाग ने इसकी सहमति नहीं दी। वित्त विभाग के पास राज्य में रेल सुविधाएँ जुटाने के लिए पहले ही 94 लाख रु० की योजना विचाराधीन थी। वह पहले रेलवे विकास योजना को सहमति देना चाहता था। इसके साथ ही वित्त विभाग ने यह भी सुझाव दिया कि यदि कावेरी नदी योजना हाथ में लेनी ही है तो क्यों न उसके जलाशय की ऊँचाई को कम कर दिया जाए। जिससे केवल उतनी बिजली बन सके जितनी बिजली की माँग कोलार स्वर्ण खदानों ने की थी। आवश्यकता से अधिक बिजली तैयार करने को वित्त विभाग के अफसरों ने "जल्दबाजी" का कदम बतलाया।

लेकिन विश्वेश्वरैया ने आवश्यकता से अधिक बिजली पैदा करने के पक्ष में जोरदार दलीलें दीं। उनका कहना था कि फालतू बिजली होने पर ही राज्य में तरह-तरह के नए उद्योग लगाए जा सकते हैं। उन्होंने बतलाया कि फालतू बिजली से लोहे को पिघलाया जा सकता है, कृत्रिम खाद, चीनी और रुई की मिलें लगाई जा सकती हैं, रेलों का विद्युतीकरण किया जा सकता है, अनेक छोटे-बड़े कस्बों की उभरती हुई बिजली की नई माँगों को पूरा किया जा सकता है।

कावेरी नदी योजना के लिए धन जुटाने के लिए विश्वेश्वरैया ने सुझाव दिया कि राज्य सरकार भी भारत सरकार की तरह ऋण ले। मैसूर राज्य के तात्कालिक दीवान श्री टी० आनन्दाराव ने वित्त विभाग के विरोध के बावजूद भी सारी योजना महामहिम महाराजा के पास स्वीकृति के लिए भेज दी। विश्वेश्वरैया ने भी महाराजा से शिकायत

की, "सोने के अण्डे देनेवाली इस योजना को वित्त विभाग मार देना चाहता है।" उन्होंने कहा कि, "वित्त सचिव, जो सदा निराशाजनक रुख अपनाते हैं, वह भविष्य नहीं देखते, उन्हें सभी जगह केवल असफलताएँ और विनाश ही दिखते हैं। राज्य की प्रगति के लिए कावेरी नदी पर जलाशय बनाना नितान्त आवश्यक है। यदि दब्बू और अक्रियाशील लोगों की सलाह मानी गई तो एक बड़ा अवसर हाथ से निकल जाएगा...।"

विश्वेश्वरैया के जोरदार तर्कों के बावजूद जब कावेरी नदी योजना को स्वीकृति न मिली तो उन्हें घोर निराशा हुई। मैसूर राज्य की सेवा उन्होंने इस शर्त के साथ ही स्वीकार की थी कि उनकी सारी योजनाएँ लागू की जाएँगी। कावेरी नदी योजना को स्वीकृति न मिलने पर उन्हें इतना बड़ा धक्का लगा कि वे मैसूर राज्य के सेवा से त्यागपत्र देने की सोचने लगे। निराशाजनक वातावरण से बाहर निकलकर अपना मन बहलाने के लिए उन्होंने कुछ दिनों की छुट्टी ली और उत्तरी भारत की यात्रा पर निकल पड़े।

छुट्टी बिताकर लौटने पर विश्वेश्वरैया ने देखा कि मैसूर सरकार के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं आया। सरकार के ढीलेपन से दु:खी होकर उन्होंने नए कामों में पहल करने की बात छोड़ दी। अब वे प्रतिदिन दफ्तर जाते और साधारण काम काज करने के बाद घर लौट आते।

विश्वेश्वरैया के काम करने के ढंग में अचानक परिवर्तन आ जाने पर महाराजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन उन्होंने विश्वेश्वरैया को बुला ही लिया और उनसे उनके बदले हुए रवैये का कारण पूछा। विश्वेश्वरैया ने बगैर किसी लाग-लपेट के सारी बात महाराजा को बतला दी कि किस प्रकार नए प्रगतिशील कामों को करने में अड़चनें पैदा की जाती हैं। उन्होंने राज्य सेवा से निवृत्त होने की इच्छा भी व्यक्त की। महाराजा ने विश्वेश्वरैया को कुछ दिन ठहरने के लिए कहा और स्वयं सारी योजना की जाँच की। अन्त में महाराजा ने सभी प्रस्ताव बगैर काटे-छाँटे स्वीकार कर लिए।

महाराजा की स्वीकृति मिलने के बाद भी अनेक कठिनाइयाँ आईं।

सन् 1892 में मद्रास सरकार के साथ हुए एक करार के अनुसार कावेरी पर बाँध बनाने से पहले मद्रास सरकार की अनुमति लेना आवश्यक था। इसलिए विश्वेश्वरैया ने सभी प्रस्ताव मद्रास सरकार के पास भेज दिए। लेकिन मद्रास सरकार स्वयं कावेरी नदी पर मेतूर बाँध बनाने की सोच रही थी। मद्रास सरकार को डर था कि यदि विश्वेश्वरैया के प्रस्ताव मान लिए जाएँ तो मेतूर बाँध पर पानी की कमी हो जाएगी। काफी लिखा-पढ़ी के बाद मद्रास सरकार ने केवल उतना बड़ा जलाशय बनाने की अनुमति दे दी, जितने बड़े जलाशय से कोलार स्वर्ण खदानों की बिजली की माँग पूरी की जा सके।

विश्वेश्वरैया मद्रास सरकार के इस फैसले से खुश नहीं हुए। उन्होंने तुरंत भारत सरकार से शिकायत की। आंकड़े देकर उन्होंने यह बतलाया कि उनके द्वारा प्रस्तावित जलाशय में जो पानी एकत्र किया गया वह उस पानी की तुलना में कुछ भी नहीं है जो मद्रास राज्य को मिलता रहेगा। विश्वेश्वरैया ने वाइसराय लार्ड हार्डिंग्स से अपील की कि कावेरी नदी योजना को भी स्वीकृति दी जाए। इस अपील पर बाँध बनाने की स्वीकृति तो मिली पर बाँध की ऊँचाई प्रस्तावित ऊँचाई की अपेक्षा केवल दो-तिहाई रखने को कहा गया। लेकिन विश्वेश्वरैया को पूरा विश्वास था कि आज नहीं तो कल भारत सरकार प्रस्तावित ऊँचाई तक बाँध बनाने की स्वीकृति अवश्य देगी। इसलिए उन्होंने आरम्भ से ही नींव आदि इतनी मजबूत डलवाई कि जिससे बाँध को कभी भी प्रस्तावित पूरी ऊँचाई तक उठाया जा सके। विश्वेश्वरैया ने ऐसा फैसला लेकर यह दिखला दिया कि उन्हें अपने पर कितना भरोसा था।

बाँध की नींव डालने का काम नवम्बर 1911 से प्रारंभ हुआ। लगभग दो वर्षों में नींव डल गई। इसी बीच कोलार स्वर्ण खदानों से संबंधित कम्पनी ने मैसूर सरकार से कहा कि यदि खदानों को जुलाई 1915 तक उतनी बिजली मिलने लगे जितनी बिजली की माँग की गई थी तो वह बीस प्रतिशत अधिक मूल्य देने को तैयार है। अत: निश्चित तिथि तक बिजली देने के लिए सभी संभव उपाय किए गए। लेकिन विश्वेश्वरैया की परीक्षा तो शायद प्रकृति भी ले रही थी। जिन दिनों

जलाशय बनाने का काम जोरों पर चल रहा था, उन्हीं दिनों डटकर वर्षा हुई। अधिक वर्षा के कारण कावेरी नदी में बाढ़ आ गई। बाढ़ से डरकर अधिकांश मजदूर काम छोड़कर भाग गए। चारों ओर तबाही मच गई। अफसर भी काम करने में हिचकिचाने लगे। महामहिम महाराजा भी कुछ दिनों के लिए काम रोकने के पक्ष में थे। कोलार स्वर्ण खदानों के प्रबन्धकों ने भी लिखा कि भयंकर बाढ़ की स्थिति को देखते हुए वे इस बात की जिद नहीं करेंगे कि उन्हें बिजली पूर्व निश्चित तिथि तक मिले, क्योंकि बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं के लिए मैसूर सरकार को किसी प्रकार जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

विश्वेश्वरैया किसी भी दशा में काम को ढीला छोड़ना नहीं चाहते थे। निश्चित तिथि तक काम पूरा करने का उनका पक्का इरादा था। उन्होंने हिदायत दी कि पास या दूर, जहाँ से मजदूर मिल सकें, लाए जाएँ जिससे काम समय के भीतर पूरा किया जा सके। समय के भीतर काम निपटाने के लिए लगभग बारह हजार मजदूर काम पर लगाए गए। हजारों गैस की लालटेनें खरीदी गईं, और दिन-रात चौबीसों घण्टे काम किया जाने लगा। तब तक विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य के दीवान बन चुके थे। उन्होंने चीफ इंजीनियर, पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल और जिले के डिप्टी कमिश्नर को कहा कि वे मौके के पास कैम्प लगाएँ और स्वयं काम पर निगरानी रखें, लोगों को बढ़ावा दें तथा उनकी जान-माल की सुरक्षा के लिए सभी संभव उपाय करें। उन दिनों विश्वेश्वरैया बहुत व्यस्त रहते थे। सुबह 11 बजे से शाम 5 बजे तक उन्हें अम्बेसी के अधिवेशन की अध्यक्षता करनी पड़ती थी, किन्तु इसके तुरन्त बाद वे कार द्वारा कन्नमबाड़ी जाते और काम की प्रगति देखते। उनके वहाँ पहुँचने पर लोगों में जोश आ जाता तथा वे और तेजी से काम करते। उन दिनों सारा काम युद्ध स्तर पर चल रहा था। विश्वेश्वरैया जब अधिवेशन में अध्यक्षता कर रहे होते, तब भी उन्हें प्रत्येक आधे घंटे की रिपोर्ट फोन द्वारा मिलती रहती। इस प्रकार कड़ी मेहनत से प्रथम चरण का काम समय के भीतर पूरा कर लिया गया। कोलार स्वर्ण खदानों के प्रबन्धक यह सब कुछ देखकर चकित रह गए। उन्होंने महाराजा को पत्र लिखकर इस बात की भूरि-भूरि

प्रशंसा की कि यह सब काम समय के भीतर पूरा कर लिया गया।

प्रथम चरण के पूरा हो जाने के बाद मैसूर सरकार ने योजना के द्वितीय चरण का काम हाथ में लेना चाहा लेकिन मद्रास सरकार ने इसका विरोध किया। मामला भारत सरकार को पंच फैसले के लिए सौंप दिया गया। इलाहाबाद के उच्च न्यायालय के जज श्री हेरी ग्रिफिन पंच सभा के अध्यक्ष नियुक्त हुए। 18 जुलाई 1913 से सुनवाई आरंभ हुई। इस मामले में मैसूर सरकार ने जो रुख अपनाया उसका पता विश्वेश्वरैया के उस भाषण से लगता है जो उन्होंने मैसूर असेम्बली में 7 अक्तूबर 1916 को दिया। उन्होंने कहा, "कावेरी नदी द्वारा जितने इलाके में सिंचाई हो रही है उसका 92% भाग मद्रास प्रेसीडेन्सी में पड़ता है और केवल 8% भाग मैसूर में। नदी का तीन-चौथाई पानी मैसूर राज्य से ही आता है पर फिर भी मैसूर राज्य द्वारा लिया गया लाभ इस तुलना में बहुत कम है। मैसूर और मद्रास राज्यों की सिंचाई आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद बचा हुआ बहुत-सा फालतू पानी प्रति वर्ष यूँही समुद्र में बह जाता है, जिसका कोई लाभ नहीं लिया जाता। मैसूर योजना इसी फालतू पानी के कुछ भाग को संचित करने के लिए बनाई गई है।.... मद्रास सरकार स्वयं इस जलाशय की तुलना में दुगुनी क्षमता का एक जलाशय मैसूर राज्य की सीमा से थोड़ी दूर मद्रास प्रेसीडेन्सी के इलाके में बनाने की सोच रही है।... बगैर किसी त्रुटि के यह सिद्ध करता है कि हमारे जलाशय के निर्माण से सिंचाई की वर्तमान व्यवस्था पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

जब पंच फैसला भारत सरकार के पास स्वीकृति के लिए भेजा गया तो मद्रास सरकार ने जलाशय को बड़ा करने के विरोध में वही पुराने तर्क दिए। मद्रास सरकार और मैसूर सरकार द्वारा उठाई गई सभी बातों पर बड़ी सावधानी से विचार करने के बाद भारत सरकार ने जलाशय बड़ा करने की अनुमति दे दी। विश्वेश्वरैया के लिए यह एक बड़ी जीत थी। इससे प्रगट होता है कि भारत सरकार भी विश्वेश्वरैया की बातों की कितनी कद्र करती थी।

लेकिन मद्रास सरकार ने भारत सरकार के इस पंच फैसले को नहीं

माना। इस फैसले के विरुद्ध अपील की गई। सन् 1919 तक विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य से इस्तीफा देकर जा चुके थे। नए दीवान के काल में इस मामले को दोनों राज्यों के बीच समझौते द्वारा सुलझाने की बात तय हुई। काफी लिखा-पढ़ी और वाद-विवाद के बाद सन् 1924 में दोनों राज्यों के बीच एक समझौता हुआ। लेकिन जो फैसला हुआ वह भारत सरकार के सन् 1916 के फैसले के ठीक विपरीत था। यद्यपि यह मैसूर राज्य के पक्ष में न था तो भी, इसे मानने के अतिरिक्त कोई चारा न था।

तब तक बने जलाशय से शिवसमुन्द्रम् के जल-बिजलीघर को नियमित पानी मिलने लगा था, अतः बिजलीघर ठीक चलने लगे थे। थोड़े बहुत इलाके में सिंचाई भी होने लगी थी। किन्तु जितना धन इस योजना पर लगाया गया था उसे देखते हुए ये लाभ नगण्य थे। महामहिम महाराजा जलाशय का पूरा लाभ लेना चाहते थे। इसलिए जून 1924 में उन्होंने विश्वेश्वरैया से पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि वे कावेरी योजना पूरी कराने में अपना सहयोग देते रहें। विश्वेश्वरैया ने उनकी बात मान ली। जुलाई 1927 में एक समिति गठित की गई जिसका उद्देश्य कावेरी जलाशय से सिंचाई संबंधी सभी लाभ उठाने के लिए राज्य सरकार को सलाह देना था। इस समिति के अध्यक्ष विश्वेश्वरैया बने।

कमेटी ने सलाह दी कि पाँच साल के भीतर 96 किलोमीटर लम्बी नहर बनाई जाए जिसे तीन चरणों में पूरा किया जाए। नहर के प्रथम भाग की लम्बाई 40 किलोमीटर रखी गई जिसे पहाड़ों को काटकर बनाना था। इसे बनाने में लगभग 75.65 लाख रुपये खर्च की संभावना थी, लेकिन इस भाग से सिंचाई की कोई आशा न थी। नहर के दूसरे भाग को पहाड़ों को चीरकर, सुरंग के रूप में बनाना था। इसकी लम्बाई लगभग 3 किलोमीटर थी और इस पर 45.62 लाख रुपये लागत आने का अनुमान था। नहर का तीसरा भाग सुरंग के दूसरी तरफ था। इससे एक बड़े इलाके में सिंचाई की आशा थी। इस भाग को बनाने की लागत 100.73 लाख रुपये आंकी गई। इस प्रकार पूरी नहर पर कुल लागत 222 लाख रुपये आने का अनुमान था। यह

धनराशि पूरे बाँध बनाने की धनराशि के लगभग बराबर थी। मैसूर राज्य ने कमेटी की सलाह मान ली और विश्वेश्वरैया से नहर बनाने के काम को पूरा करने को कहा। इस प्रकार सुरंग से होकर जानेवाली इस प्रसिद्ध नहर का निर्माण कार्य आरंभ हुआ। यह भारत की कदाचित सबसे लम्बी सिंचाई की नहर थी—इसे पहले इर्विन नहर नाम दिया गया, पर अब इसे विश्वेश्वरैया नहर कहते हैं। इस प्रकार सन् 1930 तक बाँध को पूरी ऊँचाई तक उठा दिया गया था और सन् 1932 तक नहर व सुरंग आदि का काम भी पूरा हो गया।

नहरें बन जाने से सवा लाख एकड़ बंजर धरती पर सिंचाई होने लगी। बारहों महीने पानी मिलते रहने से गन्ने की खेती को बढ़ावा मिला। गन्ने की खेती होने की वजह से मैसूर राज्य में चीनी बनाने की बड़ी-बड़ी मिलें लगाई गईं। बिजली की स्थिति अच्छी होने और कृषि की उन्नति होने से राज्य भर में तरह-तरह के नए उद्योग पनपने लगे। एक अनुमान के अनुसार कावेरी नदी की इस पूरी योजना पर लगभग 10.5 करोड़ रुपये लगे, किन्तु प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में राज्य के लोगों को लाभ 18 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष होने लगा। राज्य का राजस्व सीधे ही 2 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बढ़ गया।

विश्वेश्वरैया यह बात बड़े गर्व से कहते थे कि यद्यपि, बाँध बनाने के सारे काम में लगभग दस हजार लोगों को उनके स्थानों से हटाया गया, किन्तु उन्हें मुआवजे के तौर पर सिंचाई योग्य भूमि और मकान आदि बनाने की इतनी अधिक सुविधाएँ दी गईं कि एक भी व्यक्ति कचहरी नहीं गया। विश्वेश्वरैया की दूरदर्शिता और लगन से मैसूर राज्य में उद्योगों का नया युग प्रारंभ हुआ जिससे राज्य में खुशहाली आई। विश्वेश्वरैया सच ही कहा करते थे कि उनकी इस योजना के बाद कोई ऐसा किसान न था जिसके घर लोहे की एक तिजोरी न हो।

□ □

खोजो, सीखो और संगठित हो

विश्वेश्वरैया विदेश यात्रा के बहुत शौकीन थे। अपनी इन यात्राओं में उन्होंने बहुत कुछ देखा और समझा था। तब से उनके मन में यह बात अच्छी तरह बैठ गई थी कि किसी भी देश की प्रगति शिक्षा पर निर्भर है, बगैर उचित शिक्षा के गरीबी मिटाना संभव नहीं। इस कारण वे शिक्षा पर बहुत जोर देते थे। मैसूर राज्य तो शिक्षा प्रसार के लिए विश्वेश्वरैया का सदा ऋणी रहेगा। मैसूर राज्य की सेवा आते ही उन्होंने शिक्षा की उन्नति के लिए बहुत कुछ किया। यह उनकी सच्ची लगन और कड़ी मेहनत का फल ही था कि कुछ ही वर्षों में मैसूर राज्य शिक्षा व उद्योगों के क्षेत्र में दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति कर सका।

मैसूर राज्य में विश्वेश्वरैया चीफ इंजीनियर के पद पर कार्य करने के लिए बुलाए गए थे। लेकिन इस आमन्त्रण को उन्होंने यूँही नहीं मान लिया था। इसे स्वीकार करने से पहले उन्होंने एक शर्त रखी थी। शर्त यह थी कि राज्य सरकार बड़े पैमाने पर तकनीकी शिक्षा और औद्योगिक विकास की योजनाएँ अपने हाथ में ले। राज्य सरकार ने उनकी यह बात मान ली थी। नवम्बर 1909 को चीफ इंजीनियर के पद का कार्य भार सँभालते ही उन्होंने इस दिशा में तेजी से कदम उठाए।

उन दिनों मैसूर राज्य शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ था। चारों तरफ गरीबी थी। राज्य में शिक्षा सुविधाएँ जुटाने और आर्थिक विकास के लिए विश्वेश्वरैया की सलाह पर राज्य सरकार ने दो समितियाँ बनाईं–एक समिति तकनीकी शिक्षा के लिए और दूसरी उद्योगों के लिए। उद्योगों सम्बन्धी समिति ने धीरे-धीरे मैसूर आर्थिक सम्मेलन का रूप ले लिया। इस संस्था के सदस्य राज्य के बड़े-बड़े

अधिकारी और जाने-माने लोग होते थे। इस संस्था का उद्घाटन मैसूर के महाराजा ने सन् 1911 में किया था। इस संस्था का उद्देश्य नई-नई योजनाएँ बनाने के लिए आंकड़े एकत्र करना और जन साधारण के बीच आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करना था। इस संस्था द्वारा आयोजित सभाओं की अध्यक्षता विश्वेश्वरैया ही करते थे।

विश्वेश्वरैया शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। उनकी यह मान्यता थी कि भारत की गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने की कुंजी शिक्षा ही है। बंगलौर के सैन्ट्रल कॉलेज में उन्होंने **गरीबी के कारण** और **शिक्षा का महत्त्व** पर 16 मार्च 1912 को एक जोरदार भाषण दिया। उस भाषण में उन्होंने कहा कि "प्रत्येक देश की प्रगति वहाँ के लोगों की शिक्षा पर निर्भर है। बिना शिक्षा के हमारा राष्ट्र बालकों के समान अविकसित बुद्धि वाले नागरिकों का देश मात्र रह जाता है। एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति में अन्तर उसके जन्म और सामाजिक स्थान के अलावा इस बात से भी होता है कि किसने कितना व्यावहारिक और सामान्य ज्ञान प्राप्त किया।"

विश्वेश्वरैया आधुनिकीकरण द्वारा देशवासियों की दक्षता बढ़ाने पर विश्वास रखते थे। उन्होंने अपने इसी भाषण को जारी रखते हुए कहा था कि पुराने तौर तरीकों से भारत की आर्थिक प्रगति नहीं हो सकती। उनका कहना था, **पुरानी बातें** पुराने जमाने के लिए थीं।"

बंगलौर के सैन्ट्रल कॉलेज में दिए गए इस भाषण के अन्त में उन्होंने कहा कि बगैर निश्चित विचारों और योजनाओं के कोई बड़ा काम नहीं किया जा सकता। इस भाषण में उन्होंने नारा दिया, **खोजो, सीखो और संगठित हो।**

इस भाषण के कुछ समय बाद, 12 नवम्बर 1912 को विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य के दीवान बने थे। अब उन्हें अपने सभी विचारों को कार्य रूप देने का अच्छा अवसर मिल गया। दीवान का पद ग्रहण करते ही उन्होंने पाया कि राज्य में मुख्यरूप से चार तरह की कमियाँ हैं, जिन्हें पूरा करना चाहिए। ये चार कमियाँ थीं—

1. शिक्षा का निम्न स्तर
2. कार्य आरंभ करने की लगन व संगठन शक्ति की कमी
3. सुनियोजित विकास की कमी, और
4. निम्न आर्थिक स्थिति जिसे सुधारने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किए जा रहे थे।

शिक्षा की बुरी दशा का सजीव चित्रण करते हुए मैसूर आर्थिक सम्मेलन में विश्वेश्वरैया ने 11 जुलाई 1913 को कहा था कि,

''मैसूर राज्य में केवल 6 प्रतिशत लोग पढ़-लिख सकते हैं। उन्नत देशों में साक्षरता 85 से 95 प्रतिशत तक है।''

''अमेरिका में कुल जनसंख्या पर 14 रुपये प्रति व्यक्ति शिक्षा पर खर्च होता है, जबकि मैसूर में केवल 37 पैसे (6 आने)।''

''यद्यपि मैसूर राज्य की आबादी 60 लाख है लेकिन यहाँ एक भी विश्वविद्यालय नहीं। कनाडा की आबादी इससे डेढ़ गुनी होगी, लेकिन वहाँ 20 विश्वविद्यालय हैं।''

पहले कृषि, उद्योगों या अन्य शारीरिक मेहनत में लगे लोगों को व्यावसायिक शिक्षा देने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती थी, लेकिन अब सभ्य देशों ने इस बात को भली भाँति समझ लिया है कि कृषि और उद्योग तथा शारीरिक मेहनत के धन्धों के लिए व्यावसायिक शिक्षा बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है। यह शिक्षा जितनी अधिक वैज्ञानिक होगी, उतनी ही अधिक धन में वृद्धि होगी।

आर्थिक सम्मेलन के सुझावों पर और विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों से राज्य में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिए कदम उठाए गए। पहले कुछ इने-गिने क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा योजना लागू की गई, फिर धीरे-धीरे इसका क्षेत्र बढ़ता गया। प्राथमिक स्कूलों की संख्या बढ़ाने के लिए जोरदार प्रयास किए गए। स्कूलों के भवन बनाने के लिए उदार नीति द्वारा अनुदान दिया जाने लगा। फलस्वरूप गाँव-गाँव में स्कूल खुलने लगे। इससे देहाती क्षेत्रों में नया जीवन आरंभ हुआ। उन दिनों की बातें याद करते समय विश्वेश्वरैया बतलाते हैं कि एक बार उनकी कार पर किस प्रकार लोगों ने सिक्कों की वर्षा की। वे लोग एक थैले में सिक्के भरकर लाए थे और अपने गाँव में स्कूल खोलने के

लिए अपना योगदान देना चाहते थे।

पिछड़े और शोषित वर्गों के लिए विशेष अनुदान देने की व्यवस्था की गई। लड़कियों की शिक्षा के लिए भी प्रयत्न किए गए, फलस्वरूप 1912 से 1917 के बीच स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या 6.4 से बढ़कर 14.2 प्रतिशत हो गई। सन् 1917 में मैसूर के महारानी कॉलेज में बी०ए० का पाठ्यक्रम आरंभ करके उसका दर्जा बढ़ा दिया गया। महिलाओं के लिए प्रथम छात्रावास भी खोला गया।

विश्वेश्वरैया इस बात को सोचकर बड़े दु:खी थे कि जबकि हमारे देश में प्रत्येक चार व्यक्तियों के पीछे तीन व्यक्तियों का जीवन कृषि पर निर्भर करता है, तब भी हमारे देश में कृषि की शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से नहीं दी जाती। विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों से राज्य का पहला कृषि विद्यालय सन् 1913 में हिब्बल में खोला गया। खेतीबाड़ी सम्बन्धी नए-नए प्रयोग करने के लिए विद्यालय को एक बड़ा फार्म भी दिया गया।

तकनीकी शिक्षा के लिए मैकेनिकल इंजीनियरिंग का एक स्कूल बंगलौर में खोला गया। मैसूर में भी चामराजेन्द्र तकनीकी इंस्टीट्यूट बनाया गया। विश्वेश्वरैया व्यावहारिक ज्ञान को बहुत महत्त्व देते थे। सन् 1934 में प्रकाशित उनकी पुस्तक, **भारत के लिए योजनाबद्ध अर्थविकास**, में तो उन्होंने यहाँ तक कहा कि, "यांत्रिक (मैकेनिक्स) और यांत्रिक (मैकेनिकल) इंजीनियरिंग विषय को शिक्षा संस्थानों में विभिन्न स्तरों पर एक चौथाई छात्रों को अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए, क्योंकि ये विषय कृषि, उद्योग, यातायात, भवन निर्माण तथा अन्य धन्धों के लिए अति आवश्यक हैं।" उद्योगों से सम्बन्धित स्कूल धीरे-धीरे सभी जिलों में खोले गए।

शिक्षा प्रसार के लिए बंगलौर और मैसूर में सार्वजनिक पुस्तकालय खोले गए। प्रत्येक जिले में तथा देहाती क्षेत्रों में भी पुस्तकालय बनाए गए। ग्रामीण क्षेत्रों में चलते फिरते पुस्तकालय एक अनोखी बात थी।

कन्नड़ साहित्य परिषद् की स्थापना भी विश्वेश्वरैया की दूरदर्शिता द्वारा संभव हुई। उन्होंने इस बात की बहुत कोशिश की कि विज्ञान की सरल पुस्तकें कन्नड़ भाषा में आसानी से मिल सकें।

शिक्षा के क्षेत्र में विश्वेश्वरैया की सबसे बड़ी देन है मैसूर विश्वविद्यालय। इसका उद्घाटन जुलाई 1916 में हुआ। देशी राज्यों के बीच यह पहला विश्वविद्यालय था। इस विश्वविद्यालय को बनाने में विश्वेश्वरैया को काफी प्रयत्न करने पड़े। उन दिनों मैसूर राज्य में बंगलौर का सैन्ट्रल कॉलेज और मैसूर का महाराजा कॉलेज दो प्रमुख कॉलेज थे। ये दोनों मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बन्धित थे। जब मैसूर राज्य में अपना विश्वविद्यालय बनाने की बात उत्पन्न हुई तो इसका काफी विरोध हुआ। बंगलौर के सैन्ट्रल कॉलेज के प्रिंसिपल नए विश्वविद्यालय के पक्ष में न थे। उन्होंने धमकी दी कि वे नए विश्वविद्यालय में अध्यापन नहीं करेंगे। उधर मद्रास विश्वविद्यालय की सिण्डीकेट भी नए विश्वविद्यालय खोलने के पक्ष में न थी। विश्वेश्वरैया ने मद्रास विश्वविद्यालय की सिण्डीकेट के सामने तरह-तरह के तर्क रखे, उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि, ''यदि कोई वयस्क कन्या अपना अलग से घर बनाए तो इसमें माता को तो खुश होना चाहिए।'' लेकिन मद्रास विश्वविद्यालय की सिण्डीकेट के किसी सदस्य ने इसके उत्तर में कहा, ''भगोलू लड़की किसी प्रकार के प्रोत्साहन के लायक नहीं।'' विश्वेश्वरैया इन तर्कों और धमकियों से घबरानेवालों में नहीं थे। उन्होंने मद्रास प्रेसीडेन्सी के गवर्नर और मैसूर में अंग्रेज़ रेजीडेन्ट से मिलकर वाइसराय लार्ड-हार्डिंग पर प्रभाव डाला, फलस्वरूप उन्हें सफलता मिली और नए विश्वविद्यालय ने जुलाई 1916 से कार्य करना आरंभ कर दिया।

प्रारंभ में नए विश्वविद्यालय को तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु धीरे-धीरे सभी मुश्किलें दूर हुईं, और आज मैसूर विश्वविद्यालय देश के उन प्रमुख विश्वविद्यालयों में से एक है जिसमें सभी विषय पढ़ाए जाते हैं। मैसूर विश्वविद्यालय का पहला दीक्षांत समारोह 19 अक्तूबर 1918 को हुआ। इस समारोह की अध्यक्षता मैसूर के महाराजा ने की और दीक्षांत भाषण दिया सर आशुतोष मुखर्जी ने। इस अवसर पर मैसूर के महाराजा ने विश्वेश्वरैया की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—

''मैं चाहता हूँ कि आज के सार्वजनिक जलसे में, मैं अपनी ओर से

तथा मैसूर की जनता की ओर से सर एम० वी०, हमारे राज्य के दीवान, के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करूँ। यह मुख्यत: उनके देश प्रेम, लगन और अविरत प्रयासों का फल ही है कि आज वह जो कभी एक सपना था, पूरा हो रहा है। उनका नाम हमारे विश्वविद्यालय बनानेवालों के बीच सदा प्रमुखता से याद किया जाता रहेगा।"

विश्वेश्वरैया यह अच्छी तरह जानते थे कि बगैर ट्रेनिंग के कोई व्यक्ति उद्योग धन्धे नहीं लगा सकता। लेकिन इस प्रकार की ट्रेनिंग देने का तब कोई प्रचलन न था। विश्वेश्वरैया को यह बात खटकती रहती थी। मैसूर सरकार की सेवा छोड़ने के बाद कुछ समय के लिए विश्वेश्वरैया भद्रावती के इस्पात कारखाने के चेयरमेन रहे। तब उन्हें पाँच हजार रुपये तिमाही मानदेय मिलता था जिसे उन्होंने लेने से इंकार कर दिया था। जब यह धन एकत्र होकर डेढ़ लाख हो गया तब उन्होंने इसे एक नए संस्थान की स्थापना के लिए दान कर दिया। इस नए संस्थान का उद्देश्य युवकों को उद्योगों के लिए ट्रेनिंग देना था। जब इस संस्थान के साथ उनका नाम जोड़ने का प्रस्ताव आया तो उन्होंने साफ इंकार कर दिया। उनके सुझाव पर इस संस्थान का नामकरण मैसूर के महाराजा श्री जयचामरेन्द्र के नाम पर किया गया। इस प्रकार श्री जयचामरेन्द्र अक्युपेशनल इंस्टीट्यूट का जन्म हुआ। इस संस्थान में अनेक विषयों पर व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम चलाए जाने लगे। कुछ विषय जो इस संस्थान में पढ़ाए जाते थे, वे हैं—सिविल, मैकेनिकल, इलैक्ट्रिकल, इंजीनियरिंग, सिनेमा, धातुकर्म, खदान इंजीनियरिंग आदि। इन विषयों के पाठ्यक्रम विश्वेश्वरैया के निर्देशन में तैयार किए गए थे। प्रारंभ में इसमें केवल 168 छात्र थे, लेकिन 15 वर्षों में यह संख्या बढ़कर 1200 हो गई। इस संस्थान के नमूने पर बाद में मैसूर राज्य में अनेक पोलीटेक्निक संस्थाएँ बनाई गईं। विश्वेश्वरैया को अपने इस संस्थान से बहुत लगाव था। प्रत्येक वर्ष एक-दो बार वह इस संस्थान को देखने अवश्य जाते थे।

बंगलौर का इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का संस्थान है। किसी समय इस संस्थान में सर सी० वी०

रमन, होमी जे० भाभा और विक्रम साराभाई जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक एक साथ काम करते थे। इस संस्थान की स्थापना से ही विश्वेश्वरैया इससे जुड़े रहे। बरसों वह इसके कोर्ट के अध्यक्ष रहे। अन्य कार्यों के दबाव व गिरते स्वास्थ्य की वजह से वे स्वंय सन् 1947 में इस पद से हटे। .विश्वेश्वरैया ने इस संस्थान को नया मोड़ दिया। इसमें व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों विषयों पर शोध कार्य होता है। विश्वेश्वरैया के प्रयासों से इस संस्थान में पावर इंजीनियरिंग, रसायन इंजीनियरिंग, वैमानिक इंजीनियरिंग, अंतर्दहन-इंजन आदि विषय खोले गए। विश्वेश्वरैया इस संस्थान पर पैनी नजर रखते थे। जब-जब उन्हें कोई कमी लगी, उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उसे बतलाया। आज देश और विदेश में इस संस्थान का जो नाम है उसके पीछे विश्वेश्वरैया का कितना हाथ है यह बतलाना कठिन है।

□ □

मैसूर आयरन और स्टील वर्क्स

मैसूर राज्य में लोहे का एक बहुत बड़ा कारखाना है। मैसूर आयरन और स्टील वर्क्स नामक इस प्रसिद्ध कारखाने को बनाने का सारा श्रेय विश्वेश्वरैया को है। उन्हीं के प्रयत्नों से इस कारखाने को बनाने की योजना बनी। कई वर्ष विचाराधीन रहने के बाद इस योजना को मई, 1918 में स्वीकृति मिली और तब से ही इस पर कार्य आरंभ हुआ। यह तय हुआ था कि सारा काम 18 महीनों में पूरा कर लिया जाएगा किन्तु दिसम्बर, 1918 में विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य से अवकाश प्राप्त करके बम्बई चले गए। उनके जाने के बाद कारखाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, फलस्वरूप जो काम दिसम्बर, 1919 तक पूरा हो जाना था, वह सन् 1923 तक चलता रहा। खैर, जैसे-तैसे कारखाना जब लगभग बनकर तैयार हुआ तब अचानक लोहे की कीमतों में भारी गिरावट आ गई। लोहे की कीमतों में आई मंदी को ध्यान में रखते हुए उस विशेषज्ञ ने जिसकी देखरेख में सारा काम चल रहा था, सुझाव दिया कि कारखाने को बंद कर देना चाहिए। ऐसे कठिन समय में मैसूर के महाराजा ने तत्कालीन दीवान श्री बनर्जी को विश्वेश्वरैया के पास बम्बई भेजा और उनसे अनुरोध किया कि वे इस कारखाने का काम सँभालें और इसकी व्यवस्था में सरकार की सहायता करें। महाराजा के अनुरोध को विश्वेश्वरैया ने मान लिया और कारखाने को ठीक रास्ते पर लाने के लिए सभी संभव उपाय किए। उन्होंने सभी कठिनाइयों का डटकर मुकाबला किया। कुछ ही समय में उन्होंने इसे फिर एक शानदार मुनाफा कमानेवाला उद्योग बना दिया। मैसूर आयरन और स्टील कारखाने की सफलता विश्वेश्वरैया की योग्यता और कार्य कुशलता का एक शानदार उदाहरण है।

मैसूर राज्य की सेवा में आते ही विश्वेश्वरैया चाहते थे कि उनके राज्य में तेजी से औद्योगीकरण हो। नए-नए उद्योग लगाने के लिए एक ओर तो बिजली की आवश्यकता थी तो दूसरी ओर इस्पात की। लगभग सभी छोटे बड़े उद्योगों में इस्पात की आवश्यकता पड़ती है। बगैर इस्पात उत्पादन के अन्य उद्योग पनप नहीं पाते। इसलिए इस्पात उद्योग को एक मूल उद्योग कहा जाता है। इस्पात उत्पादन के लिए कच्चा माल कहाँ से मिल सकता है, सबसे पहले विश्वेश्वरैया का ध्यान इस ओर गया। उनके प्रयत्नों से राज्य के प्राकृतिक साधनों का भली भाँति सर्वेक्षण कराया गया। यह पाया गया कि शिमोगा जिले में भद्रावती के पास लोहे का खनिज अधिक मात्रा में है। यद्यपि कुछ लोग उस इलाके में छोटी-छोटी भट्टियाँ लगाकर लोहा बना भी रहे थे, तो भी वहाँ बड़े स्तर पर यह काम नहीं होता था। इसका मुख्य कारण था लोहे के खनिज को गलाने के लिए कोयले की कमी। भद्रावती के आसपास कोयले के भण्डार न थे। लोहे के खनिज को दूर ले जाकर गलाना फायदे का सौदा न था। इस कारण भद्रावती के लोहे के भण्डारों का कोई खास उपयोग नहीं हो पा रहा था।

ऐसे समय में विश्वेश्वरैया को अपने विदेश के अनुभव काम आए। उन्होंने अमेरिका, स्वीडन और जर्मनी की यात्राओं के दौरान देखा था कि लोग किस प्रकार कोयले की कमी को पूरा करने के लिए लकड़ी जलाकर लकड़ी का कोयला बना लेते हैं और फिर इस लकड़ी के कोयले से लोहे के खनिज को गला लेते हैं। भद्रावती के आसपास घने जंगल हैं, इसलिए विश्वेश्वरैया के मन में यह बात आई कि भद्रावती में लकड़ी का कोयला बनाया जा सकता है और वहाँ लोहे का एक बड़ा कारखाना स्थापित किया जा सकता है। अपने इन विचारों को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने सन् 1915-16 में एक योजना तैयार की। टाटा आयरन और स्टील वर्क्स, जमशेदपुर के विशेषज्ञ, श्री सी० पी० पैरिन की मदद से इस योजना को अंतिम रूप दिया गया।

इस योजना के अन्तर्गत पहले जंगलों से प्राप्त लकड़ी को भभके द्वारा कोयले में बदलना था। फिर इस कोयले की मदद से लोहे के खनिज को गलाना था। यह आशा थी कि इस प्रकार अच्छी मात्रा में

लोहा प्राप्त किया जा सकता है। इस कारखाने को भद्रा नदी के किनारे बेनकीपुर में लगाने का निश्चय किया, बाद में इसी स्थान का नाम भद्रावती पड़ गया।

पैरिन की मदद से बनाई इस योजना को सन् 1918 में स्वीकृति मिली। उस समय तक इस योजना को हमारे देश की सबसे अधिक फायदा देनेवाली योजना समझा जाता था। इस कारखाने को बनाने के लिए न्यूयार्क की इंजीनियरिंग कंपनी, मैसर्स पैरिन एण्ड मार्शल को नियत किया गया और जमशेदपुर की टाटा आयरन और इस्पात कंपनी को मैनेजिंग ऐजेन्ट बनाया गया। योजना के अनुसार कारखाने को सन् 1919 की समाप्ति तक पूरा हो जाना चाहिए था। किन्तु अनेक कारणों से यह प्रगति न कर सका। काफी विलम्ब के बाद जनवरी 1923 में कारखाने की भट्टी बनकर तैयार हो सकी।

जब काम अपने अंतिम चरण तक पहुँचने लगा तब तरह-तरह की कठिनाइयाँ आने लगीं। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में लोहे की कीमतें एकदम गिर गईं। लोहा जो कुछ समय पहले सौ रुपये टन बिकता था, तब पैंतालीस रुपयों के भाव बिकने लगा। देश और विदेश के अनेक कारखाने बंद कर दिए गए। अंतर्राष्ट्रीय बाजार की खराब स्थिति को देखते हुए राज्य सरकार के बड़े-बड़े अफसरों ने और मैसर्स पैरिन एण्ड मार्शल कम्पनी के श्री मार्शल ने सुझाव दिया कि भद्रावती के लोहे के कारखाने को बंद कर देना चाहिए। उन्हें डर था कि इस कारखाने को चलाने से लाभ नहीं वरन् नुकसान होगा। ऐसे कठिन समय में मैसूर के महाराजा ने विश्वेश्वरैया को याद किया और उन्हें कारखाना सँभालने के लिए कहा। विश्वेश्वरैया ने इस डूबते कारखाने का अध्यक्ष बनना इस शर्त पर स्वीकार किया कि खातों की जाँच के अतिरिक्त उनके काम में किसी को अधिक दखल देने का अधिकार नहीं होगा।

विश्वेश्वरैया के अध्यक्ष बनते ही भद्रावती के कारखाने में जान आ गई। उन्होंने अनेक प्रशासनिक और तकनीकी सुधार किए। कारखाने के सारे कार्यों को सात विभागों में बाँटा गया और प्रत्येक विभाग के मुखिया को यह निर्देश दिया गया कि वे प्रत्येक सोमवार को साप्ताहिक

रिपोर्ट और महीने की दस तारीख को मासिक रिपोर्ट दें। उसमें उनके विभाग से संबंधित क्रय-विक्रय, आय-व्यय, किए गए कार्य का लेखा-जोखा, कठिनाई व सुझाव हों। उन दिनों विश्वेश्वरैया बम्बई में रहते थे फिर भी दिन-प्रतिदिन साप्ताहिक व मासिक रिपोर्टों से उन्हें सारी स्थिति इतनी स्पष्ट हो जाती थी कि जैसे वे भद्रावती में ही हों। जब आवश्यकता पड़ती वे बम्बई से भद्रावती जाते। बम्बई से चल कर जब वे ट्रेन द्वारा आधी रात तक बिरूर पहुँचते तो वहाँ एक कार उनका इंतजार करती मिलती। वह रात में ही कारखाने जाते और रात की पाली का काम देखते। मशीनों के सामने खड़े होकर कार्य कर रहे कर्मचारियों से बातचीत करते। सभी छोटे-बड़े कर्मचारियों से सुझाव लेते और डायरी पर लिख लेते। फुरसत के समय उन सुझावों पर विचार करते। उन्होंने प्रत्येक विभाग को आदेश दिए कि मशीनों के कल-पुर्जों का समुचित भण्डार रखें जिससे उनकी कमी की वजह से काम न रुके।

विश्वेश्वरैया ने कारखाने को ठीक ढंग से चलाने के लिए सभी संभव कदम उठाए। कार्य ठीक न चलने पर वह ऊँचे से ऊँचे अफसर को उसकी कमी बतलाने में और उससे जवाब तलब करने में जरा न हिचकिचाते। उन्होंने सभी विदेशी विशेषज्ञों की जगह स्थानीय लोगों को भर्ती किया। उन्हें आवश्यक ट्रेनिंग दी गई। यह सभी लोग कठिनाइयों के बीच कम वेतन पर अधिक समय तक सहर्ष कार्य करते। सभी लोगों का एक ही ध्येय था–विश्वेश्वरैया के नेतृत्व में भद्रावती योजना को सफल बनाना।

धीरे-धीरे स्थिति सुधरी। कारखाने से लाभ होने लगा, लेकिन उन दिनों विश्वेश्वरैया को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ा। अनेक व्यक्तियों की आलोचना सहनी पड़ी। कारखाने के बारे में बहुत ही निराशावादी भविष्यवाणियाँ की जा रही थीं। सन् 1925 में लन्दन में रायल सोसायटी ऑफ आर्ट्स के सामने भाषण देते हुए सर आलफ्रेड चैटर्टन ने कहा कि लोहे के इस कारखाने को बंद करने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं। मैसूर, मद्रास और बम्बई के कुछ समाचार पत्र तो विश्वेश्वरैया की योजनाओं का सदा विरोध करते थे। एक समय जब

उन्हें लगा कि भद्रावती का कारखाना डूबने वाला है तो उन्होंने विश्वेश्वरैया के विरोध में तरह-तरह की बातें लिखनी शुरू कर दीं। यह कहा जाने लगा कि विश्वेश्वरैया ने मैसूर राज्य का सारा धन कृष्णराजा सागर बाँध में डुबा दिया। आर्थिक व्यवस्था को भद्रावती की लोहे की भट्टियों की आग में झोंक दिया और मैसूर का दिवाला निकाल दिया। मैसूर असेम्बली में भी इस योजना के विरोध में काफी कुछ कहा गया। इसे सफेद हाथी की संज्ञा दी गई। यह कहा गया कि भद्रावती वह स्थान है जहाँ चाँदी के सिक्कों को लोहे में बदला जाता है।

किन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। विश्वेश्वरैया के कठिन प्रयत्नों से भद्रावती का कारखाना कच्चे लोहे का उत्पादन करने लगा था और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बिकने लगा था। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बेचने के लिए इसका भाव इतना कम रखा गया था कि जितना अमेरिका का उत्पादन भाव भी न था। फलस्वरूप अमेरिका में बड़ी मात्रा में भद्रावती के लोहे का आयात होने लगा। भद्रावती के लोहे की कम कीमत का रहस्य था—आसपास के क्षेत्र में पाए जाने वाले कच्चे माल का उपयोग करना और उसी क्षेत्र के लोगों को नौकरी पर लेना। लगभग पाँच हजार लोग उन दिनों इस कारखाने में लगे हुए थे। सारी योजना को सफलता की सीमा पर लाकर विश्वेश्वरैया ने इस कम्पनी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।

जनवरी, 1927 में सी० पी० पैरिन, जब भद्रावती गए तो वहाँ की प्रगति देखकर भौंचक्के रह गए। उन दिनों विश्वेश्वरैया यूरोप में थे। पैरिन ने कारखाने के निरीक्षण के बाद तार द्वारा विश्वेश्वरैया को बधाई दी। उन्होंने मैसूर के महाराजा से भेंट की और विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। यह सब सुन महाराजा बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने विश्वेश्वरैया को पत्र लिखकर उन्हें बधाई देते हुए कहा, "आपने सारे अमेरिकन कारीगरों को हटाकर उनकी जगह पर स्थानीय लोगों से काम लिया और सफलता प्राप्त की। इस सफलता पर मैसूर राज्य के सभी लोगों को गर्व होना चाहिए।"

सितम्बर, 1929 में विश्वेश्वरैया ने जब इस कारखाने के अध्यक्ष

पद से इस्तीफा दिया तो सभी को बड़ी हैरानी हुई। इस्तीफे का कारण इस कारखाने के काम से संबंधित नहीं था। इस कारखाने को ठीक रास्ते पर लाकर विश्वेश्वरैया और बड़े-बड़े काम करना चाहते थे। इस्तीफा पाने पर मैसूर के महाराजा ने 6 अक्तूबर, 1929 को विश्वेश्वरैया को पत्र लिखा जिसमें उनके द्वारा किए गए कार्यों की प्रशंसा इन शब्दों में की, "पिछले साढ़े छः वर्षों में आपने कारखाने के विकास के लिए जो कुछ किया, मैं उसकी सराहना किए बगैर नहीं रह सकता। मैं समझता हूँ कि इस दिशा में आपने जो महान् कार्य किया उसकी प्रशंसा मुझसे अधिक कोई नहीं कर सकता।"

विश्वेश्वरैया के इस्तीफे की खबर सुनकर अमेरिकन विशेषज्ञ श्री सी० पी० पैरिन को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने 25 नवम्बर 1929 को न्यूयार्क से एक पत्र में लिखा, "मेरे लिए यह कहना कठिन है कि मैसूर राज्य के लोहे के कारखाने के व्यवस्थापक मंडल से आपके इस्तीफे की खबर सुनकर मुझे कितना दुःख हुआ।... यदि आप इस काम को अपने हाथ में न लेते तो कारखाना कब का बंद हो गया होता।... जहाँ तक आपका संबंध है, मैं समझता हूँ मैंने अपने जीवन के विस्तृत क्षेत्र में आप जैसे लोग बहुत कम देखे हैं। मैं आपके नैतिक चरित्र, देशभक्ति और उच्च आदर्शों का ही नहीं वरन्, आपकी इंजीनियरिंग योग्यता का भी सम्मान करता हूँ।"

अगस्त, 1927 में महात्मा गांधी ने भी भद्रावती के लोहे के कारखाने को देखा था। उनके साथ श्री राजगोपालाचार्य भी थे। उन दिनों इस कारखाने के बारे में तरह-तरह की बातें की जाती थीं। अनेक प्रभावशाली लोग और समाचार पत्र इस योजना की कड़ी आलोचना करते थे। महात्मा गांधी स्वयं विश्वेश्वरैया के इस मत के खिलाफ थे कि बड़े-बड़े उद्योग लगाने में भारत को अमेरिका की नकल करनी चाहिए। फिर भी उन्होंने भद्रावती के कारखाने को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और एक जलसे में विश्वेश्वरैया के प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महात्मा गांधी के इस भाषण का विवरण उनके सचिव, श्री महादेव देसाई ने 1 सितम्बर, 1927 के **यंग इण्डिया** नामक पत्र में इस प्रकार प्रकाशित किया, "कृष्णराजा सागर बाँध की तरह,

भद्रावती का कारखाना भी विश्वेश्वरैया जिन्होंने अपनी सारी योग्यता, ज्ञान, समय और शक्ति मैसूर राज्य की सेवा में लगा दी, की देशभक्ति और रचनात्मक बुद्धि का एक अद्वितीय नमूना है।... खनिज सम्पदाओं से भरे देश में इस तरह के प्रयासों का बड़ा ऊँचा स्थान है और यह हमारा कर्तव्य है कि हम इन सम्पदाओं का लाभ अपनी जनता तक पहुँचाएँ।"

इस प्रकार विश्वेश्वरैया ने लगभग मृत कारखाने में प्राण फूँककर उसे देश की सेवा में अर्पित किया।

□ □

रेलों का विस्तार और बन्दरगाह का निर्माण

जिन दिनों विश्वेश्वरैया मैसूर के दीवान बने उन दिनों सारे ब्रिटिश भारत में रेल पटरियाँ बिछाने का काम तेजी से चल रहा था, किन्तु मैसूर राज्य में यह कार्य रुका पड़ा था। किसी भी राज्य की उन्नति के लिए रेलों का क्या महत्त्व है, यह हम सभी जानते हैं। आवागमन के अच्छे साधनों के बगैर कोई राज्य उन्नति नहीं कर सकता। विश्वेश्वरैया थोड़े समय में मैसूर जैसे पिछड़े राज्य को आधुनिक बनाना चाहते थे। इसलिए सबसे पहले उन्होंने रेलों के विस्तार की ओर ध्यान दिया।

दीवान पद सँभालने के बाद उन्होंने रेल पटरियों को बिछाने का काम पुनः आरंभ करवा दिया। लेकिन रेल मार्ग बनाना कोई सरल काम नहीं होता। इसके लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। मैसूर राज्य में रेल निर्माण का कार्य तेजी से चलाने के लिए विश्वेश्वरैया बहुत आतुर थे। इसलिए उन्होंने भारत सरकार से श्री ई. ए. एस. बेल की सेवाएँ माँगी। वह उस जमाने के प्रसिद्ध इंजीनियर थे। उन्हें मैसूर राज्य में रेलवे निर्माण कार्यों के लिए चीफ इंजीनियर नियुक्त किया गया। उन्होंने राज्य में दूर-दूर तक रेलों का जाल बिछाने के लिए सभी संभव प्रयत्न प्रारंभ कर दिए। सारा काम भली प्रकार चलता रहे, इस उद्देश्य से रेलवे विभाग की अलग से स्थापना की गई।

उस जमाने में रेलगाड़ियों को चलाने का काम अंग्रेजी कंपनियाँ ही करती थीं। मैसूर राज्य में रेलों का प्रबन्ध मैसूर तथा दक्षिण मराठा रेलवे नामक अंग्रेजी कंपनी के पास था। विश्वेश्वरैया को यह बात

अच्छी नहीं लगी। उन्हें अपने देश के लोगों पर पूरा भरोसा था। उनकी मान्यता थी कि जब तक राज्य की रेलें, राज्य के अधिकार में न हों तब तक न तो राज्य की उन्नति हो सकती है और न ही रेलों की। इसलिए विश्वेश्वरैया ने राज्य के कुछ रेल मार्गों को राज्य को सौंपने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव को न तो कंपनी ने और न ही अंग्रेज रेजीडेंट ने माना। रेलों से अंग्रेजों को भारी लाभ होता था। वे उन्हें छोड़ने को तैयार न थे। विश्वेश्वरैया ने सारा मामला लंदन में भारत मंत्री तक पहुँचाया और राज्य की रेलें राज्य को सौंप देने के लिए दलीलें दीं। अंत में फैसला मैसूर राज्य के पक्ष में हुआ। इस प्रकार मैसूर तथा दक्षिण मराठा रेलवे से मैसूर-बंगलौर तथा अन्य ब्रान्च लाइनों का सारा प्रबन्ध मैसूर राज्य के रेल विभाग के अधीन आ गया। जब यह समाचार मैसूर के महाराजा को दिया गया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने, 10 अप्रैल 1918 को विश्वेश्वरैया को उनकी इस भारी सफलता पर पत्र भेजकर कहा–"मुझे आपके पत्र द्वारा यह जानकर बड़ी खुशी हुई है कि भारत सरकार ने बिरूर-शिमोगा, मैसूर-नंजनगढ़ तथा बंगलौर-मैसूर रेलवे लाइनों का प्रबंध मैसूर सरकार के हवाले कर दिया है। इससे मैसूर सरकार को जो भारी लाभ हुआ उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।"

विश्वेश्वरैया के दीवान बनने पर राज्य में रेलवे लाइन की कुल लम्बाई 662 किलोमीटर (411 मील) थी। विश्वेश्वरैया चाहते थे कि यह बढ़कर कम से कम 1660 किलोमीटर (1000 मील) हो जाए। नए रेल मार्ग बनाने में सबसे बड़ी कठिनाई भारत सरकार से अनुमति लेने में आती थी। बहुत थोड़े समय में लगभग 322 किलोमीटर (200 मील) लम्बी नई रेलवे लाइन बिछाने में सफलता मिली। इस प्रकार मैसूर-आरसीकेरे, बंगारपेट-कोलार-चिकबल्लापुर और चिकजाजूर-चित्रदुर्ग लाइनें पूरी हुईं। मैसूर-आरसीकेरे लाइन बिछाने के लिए कई पुल बनाए गए और पहाड़ियों को गहरा काटा गया। इंजीनियरिंग की दृष्टि से यह एक अद्वितीय कार्य था।

विदेशों से व्यापार की सुविधा जुटाने के लिए मैसूर राज्य में एक बन्दरगाह की कमी बहुत समय से खटक रही थी। सभी का विचार था

कि मंगलौर में एक ऐसा बन्दरगाह बनाया जा सकता है जो हर मौसम में खुला रहे। विश्वेश्वरैया भी बन्दरगाह की कमी महसूस कर रहे थे। उन्होंने इस मामले पर इंजीनियरिंग की दृष्टि से विचार किया। अपने अनुभव के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मंगलौर की अपेक्षा भाटकल नामक स्थान पर बन्दरगाह बनाना अधिक उपयुक्त होगा। इसलिए विश्वेश्वरैया की इच्छा थी कि भाटकल बन्दरगाह के लिए योजना तैयार की जाए। अतः उन्होंने सबसे पहले इसके लिए जाँच पड़ताल का कार्य आरंभ किया। यह सोचा गया कि हर मौसम में खुले रहनेवाले इस बन्दरगाह के बन जाने से भद्रावती के लोहे और इस्पात के निर्यात को बढ़ावा मिलेगा। इसके अतिरिक्त इस बन्दरगाह के खुल जाने से आशा थी कि बम्बई और मद्रास राज्यों के कुछ भागों को भी विदेशी व्यापार की सुविधा मिलेगी।

लेकिन सन् 1918 तक, जब विश्वेश्वरैया ने मैसूर राज्य से अवकाश प्राप्त किया, इस संबंध में केवल आवश्यक जाँच कार्य ही हो पाया। इसे शिमोगा से जोड़नेवाली प्रस्तावित रेलवे लाइन का सर्वेक्षण कार्य भी विश्वेश्वरैया के सेवाकाल में पूरा हो गया। लेकिन विश्वेश्वरैया इस संबंध में कोई निश्चित योजना बनाने से पहले ही राज्य छोड़कर बम्बई चले गए।

फिर भी भाटकल बन्दरगाह को लेकर विश्वेश्वरैया की कड़ी आलोचना की गई। यह कहा जाने लगा कि अब विश्वेश्वरैया राज्य के जहाज को अरब सागर में डुबाने वाले हैं। दीवान पद से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी उनकी आलोचना होती रही। यह देखकर विश्वेश्वरैया को बड़ी हैरानी हुई। अंत में उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए 25 मार्च, 1928 को एक प्रेस नोट जारी करना पड़ा। इस प्रेस नोट में विश्वेश्वरैया ने यह तो स्वीकार किया कि मैसूर राज्य में एक बन्दरगाह बनाने का जाँच पड़ताल का काम उनके कार्यकाल में हुआ लेकिन उस पर उन्होंने कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया। इसलिए इस संबंध में उनकी आलोचना करने का कोई आधार नहीं।

कार और हवाई जहाज बनाने के प्रयत्न

विश्वेश्वरैया से भेंट करने के बाद लंदन के एक दैनिक पत्र **दी पीपुल** के संवाददाता ने लिखा कि भारत में बाँधों के सबसे बड़े निर्माता अब बहुत जल्द भारत के हेनरी फोर्ड बनने वाले हैं। यह बात सन् 1935 की है। इस समाचार से मोटर उद्योग की दुनिया में खलबली मच गई। सभी जानते थे कि हेनरी फोर्ड की तरह विश्वेश्वरैया के पास वे सभी गुण हैं जो एक विशाल उद्योग को नए सिरे से आरंभ करने के लिए चाहिए।

उन दिनों विश्वेश्वरैया भारत में मोटरगाड़ी उद्योग स्थापित करने के इरादे से सलाह-मशविरा करने के लिए लंदन गए हुए थे। विश्वेश्वरैया के मन में भारत में मोटरगाड़ियों के कारखाने लगाने की बड़ी इच्छा थी। वैसे तो वे सारे भारत में इस्पात, जहाज, मोटरगाड़ियों, रेयन, रसायनिक पदार्थों के बड़े-बड़े कारखाने लगाने के सपने देखा करते थे, लेकिन मोटर उद्योग को वे प्राथमिकता देते थे। उनकी मान्यता थी कि बगैर मोटरगाड़ियों के उद्योग के बिना न तो कोई देश प्रगति कर सकता है और न ही युद्ध में अपना बचाव कर सकता है।

विश्वेश्वरैया के मन में यह बात अच्छी तरह बैठ चुकी थी कि भारतवासी भी बड़े-बड़े कारखाने चलाने की क्षमता रखते हैं। भद्रावती के लोहे के कारखाने को उन्होंने स्थानीय लोगों के साथ सफलतापूर्वक चलाकर दिखला ही दिया था। वे जमशेदपुर के टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के सन् 1927 से डायरेक्टर रहे थे और इस पद पर सन् 1955 तक बने रहे। उन्हें मैसूर राज्य में तरह-तरह के उद्योग स्थापित करने का पहले ही काफी अनुभव था। जब उन्हें लगा

कि देश में मोटरगाड़ी उद्योग स्थापित करने की बहुत आवश्यकता है तो उनका ध्यान उस ओर जाना स्वाभाविक ही था। उनके प्रयत्नों से सन् 1935 में बम्बई हाउस में प्रतिनिधि नागरिकों की एक सभा बुलाई गई जिसमें इस समस्या पर विचार किया गया। यह तय हुआ कि देश में मोटरकार बनाने के कारखाने लगाने के लिए आवश्यक जाँच पड़ताल का कार्य आरंभ कर दिया जाए। इस जाँच पड़ताल की सारी जिम्मेदारी विश्वेश्वरैया को सौंपी गई। इस जिम्मेदारी को निबाहने के लिए उसी वर्ष वे अपने खर्चे से विदेश यात्रा पर निकल पड़े और मोटरगाड़ी उद्योग के बारे में जानकारी एकत्र करने में जुट पड़े। वे लगभग छः महीने यूरोप और अमेरिका में रहे। यहाँ उन्होंने मोटरगाड़ी उद्योग के सम्बन्ध में बारीकी से अध्ययन किया।

इंग्लैंड में उन्होंने कंवेन्ट्री, ऑक्सफोर्ड, बर्मिंघम और डर्बी के कारखाने देखे। ऑक्सफोर्ड में मोरिस मोटर्स के कारखाने से वे बहुत प्रभावित हुए। बर्मिंघम में वे ऑस्टिन मोटर कम्पनी देखने गए। वे लार्ड ऑस्टिन से भी मिले। बम्बई में मोटरगाड़ी का कारखाना लगाने के लिए लार्ड ऑस्टिन ने उन्हें व्यय-विवरण तैयार करके दिया। लार्ड ऑस्टिन ने यह सलाह दी कि भारत के लिए मझोले आकार की अमेरिकन कार ठीक रहेगी। छोटी कार के लिए उन्होंने अपनी ऑस्टिन कार को बनाने की सिफारिश की।

इंग्लैंड की यात्रा पूरी करने के बाद विश्वेश्वरैया इटली, जर्मनी और फ्रांस गए। इटली में ट्यूरिन के पास एक्स ला बेन्स में वे एक महीना ठहरे। ट्यूरिन में उन्होंने फिएट कार का कारखाना देखा। इस कारखाने की विशेष बात यह थी कि यह कई मंजिल ऊँची इमारत में बना हुआ था। नीचे से सारा सामान ट्रकों द्वारा ऊँचे उठते हुए घुमावदार रास्ते से ऊपर पहुँच जाता था। इस रास्ते के दोनों ओर कारखाने का काम होता रहता था।

यूरोप की यात्रा समाप्त करने के बाद विश्वेश्वरैया अमेरिका चले गये। यहाँ उनकी भेंट एक रूसी इंजीनियर से हुई। वह भी रूस में मोटरगाड़ियों का कारखाना लगाना चाहता था। रूसी इंजीनियर और विश्वेश्वरैया मित्र बन गए क्योंकि दोनों की मंजिलें समान थीं। रूसी

इंजीनियर का हाथ बटाने के लिए चालीस रूसी इंजीनियर और आए हुए थे, जबकि यही काम विश्वेश्वरैया अकेले कर रहे थे।

अमेरिका में वे फोर्ड कारखाने के जनरल मैनेजर श्री चार्ल्स ई० सौरन्सेन से मिले। वे लगभग एक महीना डेट्रायट में रहे। वहाँ उन्होंने मोटरकारों के कारखाने देखे। इस बीच वे इस बात की जाँच करते रहे कि भारत में किस प्रकार एक अच्छे ढंग का कारखाना स्थापित किया जा सकता है। उन्होंने अनुमानित व्यय-विवरण भी तैयार किए जिनकी जाँच अमेरिका के कई मोटर कारखानों के अध्यक्षों ने की।

विदेश यात्रा से लौटकर विश्वेश्वरैया ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसका शीर्षक था, **भारत में ओटोमोबाइल फैक्टरी के लिए प्रस्ताव।** यह रिपोर्ट पहले अप्रैल 1936 में प्रकाशित हुई और फिर सन् 1941 में दुबारा छापी गई। इस रिपोर्ट में मोटरगाड़ी उद्योग के बारे में हर तरह की जानकारी दी गई थी। दुनिया में कितनी गाड़ियाँ हैं, भारत में कितनी गाड़ियों का आयात होता है, कौन-कौन से मॉडल प्रचलित हैं, आदि। विश्वेश्वरैया का सुझाव था कि पहले मझोले आकार की कार और डेढ़ टन के ट्रक बनाए जाएँ। उन्होंने इन दोनों में एक ही तरह के इंजिन लगाने का प्रस्ताव किया। उनका विचार था कि ऐसा करने पर लागत में कमी आएगी। प्रति वर्ष 10,000 कारें और 5000 ट्रक बनानेवाले कारखाने पर उन दिनों लगभग 150 लाख रुपये खर्चा आने का अनुमान था। इस कारखाने में बनी प्रत्येक कार की कीमत 1420 रुपये आने की संभावना थी, जबकि अमेरिका से आयात की गई ऐसी ही किसी कार की कीमत तब 3200 रुपये होती थी।

लेकिन काफी समय तक भारत सरकार ने मोटरगाड़ी उद्योग लगाने के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकृति न दी। प्रत्येक बार ऐसे प्रस्तावों को यह कहकर टाल दिया जाता था कि इससे विश्वयुद्ध की तैयारी में विघ्न पड़ेगा। विश्वेश्वरैया को अंग्रेजी सरकार के इस रवैये से निराशा तो हुई लेकिन वे इतनी जल्दी हिम्मत हारनेवालों में से न थे। वे इस दिशा में प्रयत्न करते रहे। जैसे ही बम्बई राज्य में कांग्रेस मंत्रीमंडल बना, विश्वेश्वरैया को कुछ आशा बँधी। उन्होंने व्यक्तिगत प्रार्थना की कि राज्य में मोटरगाड़ी उद्योग स्थापित करने में सरकार सहायता दे।

विश्वेश्वरैया की प्रार्थना पर श्री बालचन्द और उनके सहयोगियों को कार बनाने के लिए कुछ सुविधाएँ प्रदान कीं। सरकार ने तकनीकी जाँच पड़ताल के लिए श्री पी० बी० अडवानी को नियुक्त किया। वे उन दिनों बम्बई राज्य के उद्योग निदेशक थे।

बम्बई में कारखाने की तैयारी के लिए श्री बालचन्द और श्री अडवानी अमेरिका गए। वहाँ वे डेट्रायट में हेनरी फोर्ड से मिले। उन्होंने फोर्ड कारखाने के इंजीनियरों से कई सप्ताहों तक विचार विमर्श किया। फोर्ड कम्पनी के इंजीनियरों ने बम्बई में कार कारखाने के बारे में तकनीकी और आर्थिक पहलुओं की जाँच-पड़ताल की। जब इस जाँच-पड़ताल से फोर्ड कम्पनी के व्यवस्थापक पूरी तरह संतुष्ट हो गए तो उन्होंने योजना पर अमल करने के लिए संकेत दिया। जब फोर्ड कम्पनी के समझौते के लिए बातचीत लगभग अंतिम दौर पर थी तब पता चला कि एक समझौते के अनुसार राष्ट्रमण्डलीय देशों में फोर्ड कार बेचने तथा बनाने के सब अधिकार कनाडा की फोर्ड कम्पनी के पास हैं। कनाडा की फोर्ड कम्पनी से बातचीत नए सिरे से शुरू की गई। कनाडा की कम्पनी के साथ कोई समझौता न हो सका। इसका मुख्य कारण यह था कि कम्पनी कारखाने में कम से कम 51 प्रतिशत हिस्सा माँग रही थी, जबकि यह शर्त भारतीय उद्योगपतियों को स्वीकार न थी। इस बातचीत के असफल हो जाने के बाद डेट्रायट के क्रिस्लर कारपोरेशन से बातचीत शुरू की गई। काफी लम्बी बातचीत के बाद जुलाई 1940 में कम्पनी ने बम्बई में प्रस्तावित कारखाने के लिए स्वीकृति दी।

उन दिनों भारत में मोटरकार बनाने के लिए भारत सरकार की अनुमति लेना आवश्यक था। लेकिन इस सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार का रवैया ठीक न था। सभी प्रयत्नों के बाबजूद भारत सरकार प्रस्ताव मानने को तैयार न हुई। विश्वेश्वरैया बम्बई राज्य के गवर्नर से मिले। उन्होंने भारत के गवर्नर जनरल से भी पत्र व्यवहार किया। इन पत्रों में विश्वेश्वरैया ने भारत में मोटरगाड़ियों के उद्योग लगाने के लिए बहुत जोर डाला। उन्होंने कहा कि ऐसे कारखाने विश्व युद्ध में विघ्न नहीं वरन् वरदान सिद्ध होंगे। उन्होंने बतलाया कि एक बार

मोटरगाड़ियों के कारखाने स्थापित हो जाने पर भारत में अस्त्र-शस्त्र और वायुयान बनाने का रास्ता खुल जाएगा। लेकिन अंग्रेजी सरकार ने कोई भी दलील नहीं सुनी।

जब विश्वेश्वरैया को लगा कि भारत सरकार बम्बई में कारखाना बनाने की अनुमति नहीं देगी तो उन्होंने बंगलौर में कारखाना बनाने की सोची। इसके लिए उन्होंने मैसूर सरकार से लिखा पढ़ी की। मैसूर राज्य के दीवान सर मिर्जा इस्माइल इस उद्योग को मैसूर राज्य में लगाने के लिए बड़े उत्सुक थे। उन्होंने विश्वेश्वरैया की रिपोर्ट को दुबारा छपवाया। लेकिन ऐसा लगता है कि अंग्रेजी सरकार ने मैसूर के रेजीडेण्ट से कह कर महाराजा पर जोर डाला और इस प्रस्ताव पर सहमति देने के लिए रोक लगा दी। इस प्रकार मैसूर राज्य में यह कारखाना न लग सका।

विश्वेश्वरैया को सरकार के इस रवैये पर घोर निराशा हुई। उन्होंने सरकार को सूचना दी कि यदि अनुमति न दी गई तो वे सारे पत्र व्यवहार को प्रकाशित कर देंगे। इससे सभी को यह पता लग जाएगा कि वे कार बनाने में क्यों असफल रहे। जब भारत सरकार के रवैये में कोई अन्तर नहीं आया तो मजबूरन विश्वेश्वरैया ने 17 फरवरी, 1942 को एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसका शीर्षक था, **ओटोमोबाइल कारखाने की योजना पर भारत सरकार का बाधापूर्ण रवैया।** विश्वेश्वरैया ने बतलाया कि भारत सरकार मोटरगाड़ियों और जहाज बनाने के उद्योग स्थापित करने में कैसे सौतेला व्यवहार कर रही है। उन्होंने कहा कि यदि सरकार चाहती तो इस्पात, ओटोमोबाइल और जहाज उद्योगों में भारत का योगदान बेहतर होता। उन्होंने सरकार पर आरोप लगाया कि पानी के जहाज बनाने में भारत सरकार ने कोई पहल नहीं की। यह दुर्भाग्य की बात है कि भारत के समुद्रों के लिए जहाज आस्ट्रेलिया में बनाए जा रहे हैं। इतना ही नहीं भारत के वाइसराय आस्ट्रेलिया में जहाज बनानेवाली कम्पनी को तार भेजकर बधाई दे रहे हैं, जबकि यह सारा काम भारत में ही किया जा सकता था।

विश्वेश्वरैया चाहते थे कि देश में पहले मोटरगाड़ियों के कारखाने

लगें और फिर उनसे प्राप्त अनुभव के आधार पर देश में ही पानी के जहाज और हवाई जहाज बनाए जाएँ। लेकिन परिस्थितियों ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि मोटरगाड़ियों से पहले ही हवाई जहाज बनाने की मंजूरी मिल गई।

अमेरिका से लौटते समय श्री अडवानी की मुलाकात हवाई जहाज में श्री डब्लू० डी० पावले से हुई जो अमेरिका के प्रसिद्ध हवाई जहाज विशेषज्ञ थे। बातों-बातों में श्री अडवानी ने श्री पावले से भारत में हवाई जहाज बनाने के लिए योजना माँगी। थोड़े समय में श्री पावले ने यह योजना बनाकर श्री अडवानी को भेज दी। इस योजना में श्री बालचन्द काफी दिलचस्पी ले रहे थे। श्री बालचन्द ने सारी योजना भारत सरकार को भेज दी और प्रार्थना की कि उन्हें हवाई जहाज बनाने का कारखाना लगाने की अनुमति दी जाए। लेकिन काफी समय तक यह अनुमति नहीं मिली।

उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। इस विश्वयुद्ध के दौरान डनकर्क की लड़ाई हुई जिसने भारत सरकार की आँखें खोल दीं। इस लड़ाई में युद्ध सामग्री का बहुत नुकसान हुआ था। इंग्लैंड में रात के समय जबरदस्त हवाई हमले होते थे जिनकी वजह से वहाँ युद्ध सामग्री बनानेवाले कारखानों को चलाना मुश्किल हो रहा था। तब अंग्रेज़ों को महसूस हुआ कि उन्होंने भारत जैसे सुरक्षित देश में उद्योगों को बढ़ावा न देकर कितनी बड़ी गलती की है। द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने श्री बालचन्द के प्रस्ताव को मान लिया। तार भेजकर अमेरिका से श्री पावले को बुलाया गया। यह तय हुआ कि बंगलौर में हवाई जहाज बनाने का कारखाना शीघ्र लगाया जाए। इस कारखाने के मैनेजिंग ऐजेण्ट बालचन्द की कम्पनी को बनाया गया।

यह जानकर कि बंगलौर में हवाई जहाज बनाने का कारखाना खुल रहा है, विश्वेश्वरैया बहुत खुश हुए। उन्हें यह जानकर तो और अधिक प्रसन्नता हुई कि श्री बालचन्द की कम्पनी इस कारखाने की मैनेजिंग ऐजेण्ट नियुक्त हुई है। इस कम्पनी के मुख्य कार्यपालक अधिकारी श्री एम० एच० शाह नियुक्त हुए। जब कारखाना बन रहा

था तो विश्वेश्वरैया लगभग रोज इसे देखने जाते। वे कारखाने में लगायी जाने वाली मशीनों व कच्चे माल को सावधानी से देखते और उनके बारे में तरह-तरह के सवाल करते। कुछ समय बाद विश्वेश्वरैया को महसूस हुआ कि श्री शाह से घण्टों बातचीत करके कहीं वे उनका समय तो नष्ट नहीं कर रहे। इसलिए उन्होंने तय किया कि अब वह श्री शाह से केवल शनिवार के दिन 5 बजे शाम को मिला करेंगे। विश्वेश्वरैया की अपेक्षा श्री शाह उम्र में छोटे थे और वे उनका सम्मान भी बहुत करते थे। इसलिए श्री शाह को यह अजीब सा लगता कि प्रति शनिवार उनसे मिलने विश्वेश्वरैया ठीक पाँच बजे उनके कमरे में पहुँच जाते थे। लेकिन विश्वेश्वरैया की उपस्थिति से सभी इंजीनियरों में विश्वास पैदा हो जाता था।

यह विश्वेश्वरैया, सर मिर्जा और श्री बालचन्द के प्रयत्नों का फल है कि आज बंगलौर में हवाई जहाज बनाने का कारखाना चल रहा है।

□ □

समुद्र के पार

पानी के जहाज में बैठकर विश्वेश्वरैया कई बार विदेश गए। उन्होंने ये विदेश यात्राएँ सैर सपाटे या मन बहलाने के लिए नहीं कीं। उनकी प्रत्येक विदेश यात्रा के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता था। वे कुल छः बार विदेश गए, जिनमें से पाँच बार अमेरिका गए। उन्होंने दुनिया के प्रायः सभी उन्नत देशों का भ्रमण किया। इन यात्राओं के दौरान विश्वेश्वरैया को तरह-तरह के अनुभव हुए। उन्होंने नई-नई चीजें देखीं। अपनी इन यात्राओं के बारे में उन्होंने **मेरे कामकाजी जीवन के संस्मरण** नामक पुस्तक में विस्तार से बतलाया है।

देहात के स्कूल में अपनी शिक्षा आरंभ करनेवाले विश्वेश्वरैया जब पहली बार भारत के बाहर सन् 1898 में जापान गए तो वहाँ का राग रंग देखकर दंग रह गए। वे तीन महीने जापान में रहे। वे जापान में खूब घूमे फिरे और वहाँ जो कुछ अच्छा लगा उसे नोट करते गए। उन्हें जापान के नेता बहुत दूरदर्शी और कुशल लगे। ये नेता बार-बार यूरोप और अमेरिका की यात्राएँ करते थे और वहाँ जो कुछ ठीक लगता था उसे जापान में भी लागू कर देते थे। फलस्वरूप जापान में भी यूरोपीय ढंग की शिक्षा दी जाने लगी थी। जापान के नेता शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार स्पष्ट थे। वे शिक्षा को चरित्र निर्माण, देशभक्ति, और व्यावहारिक धंधों के लिए ज्ञान अर्जित करने का साधन मानते थे। भारत लौटकर विश्वेश्वरैया ने अपने जापान के अनुभवों के आधार पर एक छोटी-सी पुस्तक तैयार की। लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया। तब वे एक सरकारी कर्मचारी थे और पूना में रह रहे थे। उन दिनों पूना

राजनैतिक आन्दोलनों का केन्द्र बना हुआ था। विश्वेश्वरैया को सरकारी अफसरों तथा सार्वजनिक नेताओं, दोनों से, सम्बन्ध रखने पड़ते थे। वे अपनी पुस्तक में जापान के नेताओं की राजनैतिक सूझबूझ और क्रियाकलापों की प्रशंसा करना चाहते थे, लेकिन उन्हें डर था कि पुस्तक में लिखी ऐसी बातों का कहीं गलत अर्थ न लगाया जाए। इस कारण उन्होंने पुस्तक को प्रकाशित करने का इरादा छोड़ दिया।

विश्वेश्वरैया दूसरी बार सन् 1908 में विदेश गए। इस यात्रा से पहले वे सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे चुके थे। इस यात्रा का उद्देश्य दो-तीन वर्ष यूरोप और अमेरिका में बिताकर कुछ लाभदायक अनुभव प्राप्त करना था, लेकिन उन्हें यह यात्रा बीच में ही अधूरी छोड़कर भारत वापस आना पड़ा। जैसे पहले कहा जा चुका है, जब वे इटली में भ्रमण कर रहे थे तब उन्हें हैदराबाद शहर के पुनर्निर्माण तथा भविष्य में बाढ़ के खतरे से बचाव की योजना बनाने के लिए बुलाया गया था। निमंत्रण स्वीकार करने के बाद भी वे पाँच महीने यूरोप और अमेरिका में रहे। इस यात्रा के दौरान उन्होंने इटली तथा यूरोप के अन्य देशों, अमेरिका और कनाडा, रूस आदि देशों में जल वितरण योजनाओं, बाँध, जल निकास, सिंचाई आदि कार्यों को बारीकी से देखा। इस यात्रा के दौरान उन्हें मिलान, लंदन, पेरिस आदि नगरों के निर्माणाधीन भूमिगत मलमार्गों में घूमने का अवसर भी मिला। कुछ मलमार्ग तो 24 मीटर (80 फीट) नीचे थे। ऐसे अवसरों पर इन मलमार्गों में विशेष रूप से रोशनी और हवा का प्रबन्ध किया जाता था।

इटली में विश्वेश्वरैया दो महीने रहे। वहाँ उन्होंने जल निकास, सिंचाई और मिट्टी के कटाव की समस्याओं का अध्ययन किया। मिलान में उन्हें भूमिगत मलमार्गों में घूमने का अवसर भी मिला और उनके बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही। इस पर वहाँ के चीफ इंजीनियर ने उनसे पूछा कि वे यह जानकारी प्राप्त करने के लिए क्यों परेशान हैं, जबकि भारत में यह सारा काम तो अंग्रेज इंजीनियर सँभाले हुए हैं। विश्वेश्वरैया ने उस इंजीनियर को समझाया कि बात

ऐसी नहीं, यदि भारतीय इंजीनियर कड़ी मेहनत करे तो उसके काम की भी प्रशंसा होती है।

अपनी दूसरी विदेश यात्रा के दौरान विश्वेश्वरैया स्वीडन और रूस भी गए। स्वीडन, डेनमार्क और हॉलैण्ड आदि देश भी तब तक बहुत प्रगति कर चुके थे। बाल्टिक सागर को एक नाव द्वारा पार कर वे रूस में लेनिनग्राद (तब सेंट पीटर्स बर्ग)पहुँचे, वहाँ से वे मास्को भी गए। उन दिनों रूस में जार का शासन था। उसकी वजह से जनता में असंतोष फैला हुआ था। फिर भी रूस में नागरिकों का स्तर यूरोप के दूसरे देशों की तरह काफी ऊँचा था।

यूरोप यात्रा के बाद विश्वेश्वरैया न्यूयार्क गए। वहाँ वे भारतीय व्यापारियों से मिले जो बहुत उत्साही, जीवन्त और महत्त्वाकांक्षी थे। उनसे मिलकर विश्वेश्वरैया ने अमेरिका के आर्थिक विकास के बारे में जानकारी हासिल की। वे कनाडा में ओटावा और टोरेंटो भी गए। उन्होंने डेट्रायट जाकर फोर्ड कम्पनी का मोटरगाड़ी का कारखाना भी देखा। क्राटन बाँध और उसके विशाल जलाशय को देखकर विश्वेश्वरैया बहुत प्रभावित हुए—इसी जलाशय से न्यूयार्क को पानी पहुँचाया जाता था। कनाडा से वापस लौटते समय वे लंदन होते हुए फ्रांस भी गए और अन्त में जहाज द्वारा बम्बई वापस आ गए।

विश्वेश्वरैया तीसरी बार विदेश तब गए जब वे मैसूर सरकार की सेवा से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। यह बात सन् 1919 की है। तब बम्बई के उनके कुछ मित्र जिनमें कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित सर विठ्ठलदास दामोदर ठाकरसे और मूलराज खटाऊ भी थे, दुनिया की सैर का कार्यक्रम बना रहे थे। विश्वेश्वरैया भी इसी दल में शामिल हो गए। इस दल में कुल छः व्यक्ति थे। दल के सभी सदस्य जहाज में सवार होकर बम्बई से कोलम्बो, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई होते हुए जापान के नागासाकी शहर में पहुँचे। जापान में विश्वेश्वरैया कुल तीन महीने रहे। यह जापान की उनकी दूसरी यात्रा थी। जापान में रहकर उन्होंने शिक्षा, उद्योग, वाणिज्य और राजनैतिक परिवर्तनों का अध्ययन किया।

जापान से जहाज द्वारा फिर विश्वेश्वरैया कनाडा के विक्टोरिया

नामक बन्दरगाह पहुँचे। उन दिनों यह बन्दरगाह लकड़ी के व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था। विश्वेश्वरैया ने वहाँ देखा कि किस प्रकार जगलों से प्राप्त लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे नदी में बहते हुए विक्टोरिया बन्दरगाह के निकट पहुँच जाते हैं। नदी से निकालकर इन्हें सूखने के बाद बड़ी-बड़ी मशीनों से चीरा जाता था। ये मशीनें स्वयंचालित थीं और कारखाने में केवल दो तीन व्यक्ति ही काम करते थे। चिरी हुई लकड़ी के फट्टे रेलगाड़ियों द्वारा दूर-दूर तक भेज दिए जाते थे।

अमेरिका में विश्वेश्वरैया ने सीमेंट और कागज के कारखाने भी देखे। मोटरगाड़ी उद्योग के बारे में जानकारी लेने के लिए वे डेट्रायट भी गए। शिकागो में उनके साथ एक छोटी सी घटना घटी जिसका उन पर बहुत प्रभाव पड़ा। शिकागो में कोइ चीज खरीदने वे किसी दुकान पर गए । वह चीज क्योंकि उस समय तैयार नहीं थी, इसलिए दुकान के मालिक ने कहा कि वह उसे निश्चित तारीख तक तैयार करके अपनी महिला सचिव के पास छोड़ जाएगा। विश्वेश्वरैया इस निश्चित तारीख के अगले दिन शिकागो छोड़ने वाले थे। उस चीज का खरीदना बहुत आवश्यक था, इसलिए विश्वेश्वरैया ने अपनी ओर से यह वायदा किया कि यदि निश्चित तारीख तक उन्हें वह चीज मिल गई तो वे कीमत के अलावा एक डालर अधिक देंगे। जब विश्वेश्वरैया निश्चित तारीख पर दुकान पहुँचे तो दुकानदार तो वहाँ नहीं था, लेकिन उसकी महिला सचिव के पास चीज तैयार रखी थी। विश्वेश्वरैया ने खुश होकर माल की कीमत के साथ एक डालर अधिक दे दिया। अगले दिन विश्वेश्वरैया शिकागो छोड़कर कहीं जाने वाले थे। यह बात उस दुकानदार को मालूम थी। विश्वेश्वरैया यह देखकर चकित रह गए कि अगले दिन सवेरे ही वह दुकानदार उन्हें ढूँढ़ता हुआ एक डालर लौटाने के इरादे से उनके होटल के कमरे में आ पहुँचा। विश्वेश्वरैया को ढूँढ़नें में उसे दो तीन होटलों में पूछताछ करनी पड़ी थी, तब कहीं जाकर उसे विश्वेश्वरैया मिले। विश्वेश्वरैया ने जब दुकानदार से पूछा कि उसने वह डालर वापस करने के लिए इतनी परेशानी क्यों मोल ली? तो उसने उत्तर दिया कि ''यह अतिरिक्त डालर मेरी हक की कमाई नहीं है, इसे लेकर मैं अपनी

मानसिक शांति खो बैठूँगा।"

इस तीसरी विदेशी यात्रा में विश्वेश्वरैया को एक कड़वा अनुभव भी हुआ। तब उन्हें पता लगा कि एक स्वतन्त्र देश के नागरिक और पराधीन देश के नागरिक में कितना अंतर होता है। बात सन् 1920 की है जब विश्वेश्वरैया अमेरिका की आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर रहे थे। इस सम्बन्ध में वे अपने एक मित्र के साथ फैडरल रिजर्व बैंक के अध्यक्ष से मिलने गए। बातों के बीच विश्वेश्वरैया ने उनसे भारत की वित्तीय स्थिति के बारे में कुछ प्रश्न पूछे। उन्होंने उनसे भारत की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए कुछ सुझाव भी माँगे। इस पर उस विशेषज्ञ ने उनके साथ गए मित्र से कहा, "इन सज्जन से कहो कि वे अपने देश लौट जाएँ, वहाँ के विधान को एक राष्ट्रीय सरकार के विधान में बदल दें। उसके बाद मेरे पास आएँ। तब ही मैं उन्हें उचित सलाह दूँगा।"

विदेशों में भ्रमण करते समय विश्वेश्वरैया के मन में यह बात सदा खटकती रहती कि भारत इतना पिछड़ा हुआ क्यों है। वे जिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलते उनसे यही प्रश्न पूछते। अमेरिका के वाणिज्य सचिव, श्री हरवर्ट हूवर से जब उन्होंने यही प्रश्न पूछा तो उन्होंने सीधा उत्तर दिया, "आप लोगों में कुछ चेतना नहीं है।"

विदेश यात्रा के अपने अनुभव और भारत की दशा का सही अनुमान लगा लेने के बाद विश्वेश्वरैया के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। अपने देश को किस प्रकार प्रगति की राह पर पहुँचाया जा सकता है, यह प्रश्न उनके मस्तिष्क में पहले ही घूम रहा था। अपने देश को आगे बढ़ाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है, इस बारे में अपने विचार लिपिबद्ध करने का उन्होंने इरादा किया। अपने इस इरादे की पूर्ति के लिए वे लंदन आकर **भारत का पुनर्निर्माण** पुस्तक लिखने में जुट गए। इस पुस्तक को लिखने में उन्हें दस महीने लगे। यह पुस्तक लंदन के पी० एस० किंग एण्ड संस लि० द्वारा सन् 1920 में प्रकाशित की गई। इस पुस्तक को लिखने में उन्हें इंडिया आफिस लायब्रेरी से बहुत मदद मिली। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद वे बम्बई लौट आए। बम्बई लौटने से पहले वे भारत सचिव श्री एडविन

मान्टेग्यु से भी मिले थे जिन्होंने विश्वेश्वरैया को राज्य सचिवों की परिषद् का एक पद सँभालने के लिए आमंत्रित किया था। यह स्थान भावनगर के सर प्रभाशंकर डी० पट्टणी के चले जाने से खाली हुआ था। लेकिन विश्वेश्वरैया ने यह आमंत्रण स्वीकार नहीं किया। उनका विचार था कि वहाँ रहकर कोई भारतीय अपने देश के लिए कोई उपयोगी काम नहीं कर सकता।

विश्वेश्वरैया चौथी बार सन् 1926 में विदेश गए। उन्हें भारत सरकार ने एक जाँच समिति का सदस्य बनाकर लंदन भेजा था। इस समिति का काम बड़ा पेचीदा था जो बम्बई शहर के विस्तार से सम्बन्धित था। यह सभी को ज्ञात है कि समुद्र के कम निचले भागों को पाटकर बम्बई शहर का कई बार विस्तार किया गया। सन् 1919 में भी इसी प्रकार के काम के लिए एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ सर जार्ज बचनन की सेवाएँ प्राप्त की गईं। सर बचनन का दबदबा इतना अधिक था कि उनके काम के बारे में पूछताछ करने की किसी को हिम्मत न होती थी। वे सारे काम के बेताज बादशाह थे। लेकिन सन् 1924 तक लोगों को उनके काम में कमी दिखने लगी। अखबारों में भी कड़ी आलोचनाएँ छपने लगीं। मजबूर होकर, बम्बई सरकार की प्रार्थना पर भारत सरकार ने एक जाँच समिति का गठन किया। उसके इंजीनियरिंग सदस्य के रूप में विश्वेश्वरैया को नियुक्त किया गया। इस समिति की बैठकें लंदन में भी होती थीं। इन बैठकों में भाग लेने के लिए विश्वेश्वरैया को चौथी बार विदेश जाना पड़ा। इस जाँच समिति का काम दिसम्बर 1926 तक पूरा हो गया।

जब लंदन में जाँच समिति के काम से विश्वेश्वरैया मुक्त हो गए तो वे यूरोप के कुछ अन्य देशों और अमेरिका की यात्रा पर निकल पड़े। उन दिनों वे भद्रावती के लोहे व इस्पात कारखाने के अध्यक्ष थे। इस यात्रा के दौरान उन्होंने इस्पात और लकड़ी के पकाव से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर विशेषज्ञों से सलाह मशविरा किया। उन्होंने अमेरिका में भद्रावती में बने लोहे को बेचने का प्रयत्न किया। इस यात्रा में उन्होंने एक नई बात देखी। उन्होंने देखा कि सलाहकार इंजीनियरों की एक संस्था बर्लिन और उसके आसपास स्थापित

लकड़ी पकाने के लगभग अस्सी कारखानों, की देखरेख एक साथ करती थी।

पाँचवी बार विश्वेश्वरैया सन् 1935 में विदेश गए। इस यात्रा का उद्देश्य मोटरगाड़ियों को बनाने के लिए सभी तरह की जानकारी एकत्र करना था। उन्होंने यूरोप और अमेरिका के सभी प्रसिद्ध मोटरगाड़ियों के कारखाने देखे। विदेश यात्रा से लौटकर उन्होंने एक रिपोर्ट छापी। मोटरगाड़ियों का कारखाना लगाने के लिए उन्होंने बहुत यत्न किए लेकिन अंग्रेज़ी सरकार का समर्थन न मिलने से उन्हें सफलता न मिल सकी।

छठी बार विश्वेश्वरैया सन् 1946 में विदेश गए। तब उनकी उम्र 86 वर्ष की थी। यह यात्रा उन्होंने अखिल भारतीय निर्माता संघ के नौ सदस्यों के शिष्टमण्डल के नेता के रूप में की। यह शिष्टमण्डल अमेरिका, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन और यूरोप के अन्य देशों में गया। जैसे ही बम्बई के बन्दरगाह में शिष्टमण्डल के सदस्य जहाज पर सवार हुए, विश्वेश्वरैया ने सभी के कार्यक्रम तय कर दिए। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि शिष्टमण्डल के सदस्य प्रतिदिन एक साथ मिल-बैठकर अपने विचारों और अनुभवों का आदान-प्रदान कर सकें। उन्होंने प्रत्येक सदस्य से उस उद्योग के बारे में टिप्पणी तैयार करने को कहा जिसमें उसकी रुचि हो।

सबसे पहले यह शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड पहुँचा। वहाँ दल के सदस्य कई उद्योग धंधों को देखने के लिए गए। इसमें कपड़ा, इंजीनियरिंग, रसायनिक उद्योग और ब्रिस्टल तथा डर्बी के हवाई जहाज बनाने के कारखाने सम्मिलित थे। इंग्लैण्ड की यात्रा पूरी करने के बाद शिष्टमण्डल अमेरिका और कनाडा के लिए रवाना हो गया। वहाँ दल के सदस्यों ने बड़े-बड़े उद्योगों को देखा जिनमें नियागरा जल प्रपात पर बना बिजलीघर और शिकागो के बहुत से बड़े-बड़े कारखाने शामिल थे। शिष्टमण्डल डेट्रायट और विंडसर के कारखाने देखने भी गया। न्यूयार्क के निकट उन्होंने हवाई जहाजों का कारखाना देखा। विश्वेश्वरैया को टेनीसी घाटी योजना में व्यक्तिगत रुचि थी, इसलिए थोड़ा समय निकालकर वे अकेले ही इसे देखने गए। अमेरिका और

कनाडा का भ्रमण करने के बाद दल कई भागों में बँट गया और दल के सदस्य फ्रांस और यूरोप के दूसरे देशों की यात्रा पर निकल पड़े। वापसी यात्रा से पहले सभी सदस्य लंदन में एकत्र हुए और सभी ने मिलकर दिसम्बर 1946 में लंदन के उद्योग मेले को देखा।

भारत लौटकर इस शिष्टमण्डल ने 298 पृष्ठों की एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट में बड़े-बड़े उद्योग धंधों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी थी। रिपोर्ट में दुनिया के बड़े-बड़े उद्योगों के बारे में चौंकानेवाली बातें थीं। जैसे अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन के बारे में कहा गया कि उसकी अपनी खदानें हैं, रेलें और जहाज हैं। इसी प्रकार फोर्ड मोटर्स के बारे में बतलाया गया। उस कारखाने से प्रतिदिन 4000 कारें तैयार होती थीं, लगभग 85000 व्यक्ति काम पर लगे हुए थे, कम्पनी की एक इमारत तो 1.6 किलोमीटर (1 मील) लम्बी थी। जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के बारे में बतलाया गया कि इसमें 247 इमारतें थीं जिसमें 55000 व्यक्ति काम करते थे। कम्पनी वर्कशाप की लम्बाई 270 मीटर (900 फीट) और मशीनशाप की लम्बाई 540 मीटर (1800 फीट) थी। रिपोर्ट में कहा गया कि भारत ने केवल कृषि को अपना कार्यक्षेत्र चुनकर बहुत नुकसान उठाया है। विश्वेश्वरैया की शुरू से यह मान्यता थी कि अकेले कृषि पर निर्भर रहनेवाला कोई देश सम्पन्न नहीं हो सकता। सभी प्रगतिशील देश उद्योगों पर जोर देते हैं। विश्वेश्वरैया की अध्यक्षता में छपी इस रिपोर्ट ने स्वतन्त्रता के बाद देश के औद्योगीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। □ □

गंगा नदी पर पुल

कहा जाता है कि एक बार नब्बे वर्षीय विश्वेश्वरैया को कुछ कागज पत्र और नक्शे दिखलाए गए। उनसे पूछा गया कि गंगा नदी पर रेलवे का नया पुल कहाँ बनाया जाए। उन्होंने नक्शों को बगैर चश्मे के बारीकी से देखा और एक स्थान पर पेंसिल रखकर कहा कि नया पुल यहीं बनना चाहिए। करोड़ों की लागत का वह पुल वहीं बनाया गया। ऐसी बातें विश्वेश्वरैया के बारे में खूब प्रचलित हैं। यह सच है कि विश्वेश्वरैया से गंगा पर नए पुल को बनाने की जगह के बारे में राय ली गई थी। उन्होंने जिस स्थान का चुनाव किया, पुल बना भी वहीं लेकिन यह कहना कि उन्होंने यह निर्णय केवल नक्शा देखकर मिनटों में कर लिया, सच नहीं है। ऐसी बातें तो इसलिए प्रचलित हो गई हैं क्योंकि लोगों को विश्वेश्वरैया पर इतना भरोसा था कि यदि वे सचमुच यूँही कहीं पेंसिल रख देते तो, शायद पुल बन भी वहीं जाता। लेकिन विश्वेश्वरैया कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे एक महान् इंजीनियर थे। वे जानते थे कि इंजीनियरिंग के कामों में लापरवाही नहीं चलती। इंजीनियरिंग से सम्बन्धित बड़े-बड़े निर्णय यूँही नहीं ले लिए जाते। इनके लिए तरह-तरह की जाँच पड़ताल करनी होती है, सर्वेक्षण करना होता है, मौका देखना पड़ता है। इसलिए जब विश्वेश्वरैया ने गंगा नदी पर नए पुल बनाने के लिए अपनी राय देना स्वीकार कर लिया तो उन्होंने अपनी उम्र की परवाह न करते हुए कठिन परिश्रम किया।

यह बात सन् 1951-52 की है। तब गंगा नदी को पार करने के लिए कुल सात रेलवे पुल थे। इनमें से छः तो उत्तर प्रदेश में हैं और सातवाँ पूर्वी पाकिस्तान में, जो अब बंगलादेश कहलाता है। बंगलादेश के

इलाके में पड़नेवाला रेलवे पुल सन् 1915 में सारा नामक स्थान पर बनाया गया था। उत्तर प्रदेश के छः पुलों में से पूर्व की ओर का अंतिम पुल बनारस में है। इसे सन् 1887 में बनाया गया था। पहले इसे डफरिन ब्रिज कहते थे। अब इसे मालवीय पुल कहा जाता है। बनारस से लेकर सारा तक लगभग 930 किलोमीटर (581 मील) की लम्बाई में गंगा पर कोई पुल न था। इससे बड़ी परेशानी होती थी।

बहुत दूरी तक गंगा पार करने के लिए पुल न होने की कमी सबसे अधिक बिहार राज्य को खटकती थी। गंगा नदी का कई किलोमीटर चौड़ा पाट उत्तरी बिहार और दक्षिणी बिहार को अलग करता है। गंगा नदी पर कोई पुल न होने की वजह से राज्य के प्रशासन, व्यापार और उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ता था। इसलिए बिहार राज्य ने कई बार गंगा पर पुल बनाने की माँग उठाई। सन् 1945 में रेलवे बोर्ड ने पटना या मोकामा घाट पर सड़क व रेल का सम्मिलित पुल बनाने के लिए जाँच पड़ताल भी की। इस जाँच के आधार पर यह पाया गया कि मोकामा घाट पर पुल बाँधना अधिक उपयुक्त होगा। मोकामा घाट भी बिहार राज्य में है।

किन्तु प्रशासनिक सुविधा और अन्य बातों को ध्यान में रखते हुए बिहार सरकार नए पुल को पटना में बनवाना चाहती थी। उधर पश्चिमी बंगाल की सरकार जोर डाल रही थी कि नया पुल फरख्खा या राजमहल पर बने। असम के चाय बागीचों के मालिक व असम सरकार नए पुल को सकरीगली घाट पर बनवाना चाहती थी। इस प्रकार नए रेलवे पुल बनाने की एक साधारण सी बात कई राज्यों के बीच विवाद का प्रश्न बन गई। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि फैसला कैसे किया जाए।

आखिर सारा मामला देश के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के पास पहुँचा। नेहरू जी ने इस विवाद को सुलझाने के लिए यह तय किया कि इसे किसी ऐसे कुशल इंजीनियर के पास भेजा जाए जो ईमानदार और देशभक्त हो, जो बगैर किन्हीं पूर्वाग्रहों के तथा स्थानीय राजनीति से हटकर फैसला ले सके और जिसकी प्रतिष्ठा इतनी हो कि उसके द्वारा लिया गया फैसला सभी को स्वीकार हो। इस काम के

लिए विश्वेश्वरैया से बेहतर भला कौन हो सकता था। लेकिन उस समय विश्वेश्वरैया की उम्र नब्बे वर्ष से अधिक थी। इसलिए डर था कि वे इस जिम्मेदारी को लेने से मना न कर दें।

प्रधानमंत्री के सुझाव पर रेलवे मंत्री श्री एन० गोपालास्वामी अयंगार ने जनवरी 1952 में विश्वेश्वरैया को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने अनुरोध किया कि रेल के एक नए पुल को कहाँ बनाया जाए, इस बारे में वे अपनी राय दें। रेलवे मंत्री ने उन्हें हर तरह की सुविधा देने का वायदा किया। उनको एक विशेष रेलगाड़ी दी गई और नदी पार करने के लिए स्टीमर का भी प्रबन्ध किया गया। विश्वेश्वरैया की सलाह पर इस काम के लिए एक विशेष कमेटी बनाई गई।

मार्च 1952 में विश्वेश्वरैया बम्बई से दिल्ली आए और इस काम में जुट गए। सरकार ने उन्हें गंगा नदी पर पुल बनाने के लिए चार स्थानों में से एक स्थान को लागत, यातायात, इंजीनियरिंग सुविधा, प्रशासन और देशहित को ध्यान में रखते हुए चुनने के लिए कहा। जो चार स्थान विचाराधीन थे, उनमें पटना, मोकामा, सकरीगली घाट और फरक्खा या राजमहल सम्मिलित थे।

सबसे पहले विश्वेश्वरैया ने रेलवे बोर्ड के चैयरमेन से सलाह मशविरा किया। फिर उन्होंने भारत सरकार के सड़कों से सम्बन्धित सलाहकार इंजीनियर से बातचीत की जिससे इस रेल-सड़क पुल को राष्ट्रीय सड़क मार्ग से जोड़ा जा सके।

अपनी उम्र की परवाह न करते हुए वे चारों स्थानों को देखने भी गए। पहले उन्होंने अपनी टीम के साथ वायुयान द्वारा गंगा नदी के आसपास की भूमि देखी। वायुयान में वे सह-पायलट के स्थान पर बैठे। वायुयान को कम ऊँचाई पर धीमी गति से उड़ाया गया। उसके बाद वे कलकत्ता गए। वहाँ उन्होंने पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री से बातचीत की। कलकत्ता में वे पोर्ट ट्रस्ट के अधिकारियों और चेम्बर ऑफ कामर्स के सदस्यों से भी मिले। फिर केन्द्रीय जल और पावर कमीशन के अधिकारियों के साथ फरक्खा और राजमहल की सैर की। इसके बाद वे सकरीगली घाट गए। अंत में उन्होंने मोकामा और पटना के दोनों ओर का इलाका देखा। पटना में वे बिहार सरकार के मंत्रियों

और अधिकारियों के अलावा व्यापार, उद्योग और जनता के प्रतिनिधियों से भी मिले। बिहार सरकार की सलाह पर वे नेपाल में काठमाण्डू भी गए और पुल की समस्या पर बातचीत की। उन्होंने असम सरकार के विचार भी लिए। दिल्ली में थल सेना के चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ जनरल थिम्मया तथा क्वार्टर मास्टर जनरल थोरट से सुरक्षा की दृष्टि से नए पुल की समस्या पर बातचीत की गई।

सभी प्रकार की जाँच पड़ताल और आंकड़े एकत्र करने के बाद कमेटी की बैठक दिल्ली में हुई। लेकिन गिरते स्वास्थ्य की वजह से विश्वेश्वरैया को बम्बई लौट जाना पड़ा। आगे की सारी कार्यवाही वहीं हुई। पश्चिमी रेलवे के हेड क्वार्टर में गंगा पर पुल के सम्बन्ध में एक अस्थाई दफ्तर खोल दिया गया।

काफी छानबीन और सभी मुद्दों को ध्यान में रखते हुए विश्वेश्वरैया इस नतीजे पर पहुँचे कि गंगा पर केवल एक पुल उस क्षेत्र की सभी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाएगा। लेकिन क्योंकि सरकार मात्र एक ही पुल बनाने का विचार रखती थी तो इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थान मोकामा पाया गया। विश्वेश्वरैया ने आगे कहा कि फरक्खा पर एक बहु उपयोगी बाँध बनाने पर सरकार गहराई से विचार करे।

भारत सरकार ने विश्वेश्वरैया की सभी सिफारिशों को स्वीकार किया। इस प्रकार 25 वर्षों से चला आ रहा विवाद समाप्त हुआ। विश्वेश्वरैया द्वारा बतलाए गए स्थान पर रेल-सड़क पुल का निर्माण कार्य सितम्बर 1953 में आरंभ हुआ और मार्च 1959 में समाप्त हुआ। स्वदेशी उद्योग के समर्थक होते हुए भी विश्वेश्वरैया ने सलाह दी कि इस महत्त्वपूर्ण पुल के लिए सामग्री व डिजाइन आदि विदेशी कम्पनियों से बनवाए जाएँ। उनकी सलाह के अनुसार ऐसा ही किया गया। रेल-पुल के निर्माण की कुल लागत 1,39,08,900 रुपये आई। इस पुल का विधिवत् उद्घाटन 1 मई, 1959 को देश के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया। आज इस रेल-सड़क पुल से होकर हजारों लोग इधर से उधर आते-जाते हैं पर कितनों को पता है कि इस पुल को बनाने में विश्वेश्वरैया का कितना योगदान रहा।

□ □

व्यक्तिगत विशेषताएँ

विश्वेश्वरैया का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था, लेकिन अपने कठोर परिश्रम और आत्मविश्वास के बल पर वे एक दिन **भारतरत्न** जैसा सम्मान पा सके। वे सौ वर्षों से अधिक जीवित रहे। उनकी असाधारण सफलता और दीर्घ जीवन सभी के लिए आश्चर्य का विषय है। उसका रहस्य उनके कार्य करने की पद्धति, दिनचर्या और व्यक्तिगत जीवन के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने वे सभी दुर्लभ गुण विकसित कर लिए थे जो किसी व्यक्ति को महान् बनाते हैं।

विश्वेश्वरैया ने सदा नियमित जीवन बिताया। जब वे सरकारी सेवा में थे तब भी वे एक निश्चित दिनचर्या के अनुसार कार्य करते थे। जैसे-जैसे वे अधिक जिम्मेदारी के पदों पर पहुँचते गए वैसे-वैसे उनकी व्यस्तता बढ़ती गई। वे अपनी दिनचर्या का और भी कड़ाई से पालन करने लगे।

वे अपने मिलनेवालों की बहुत कद्र करते थे। जब तक वह बैठ नहीं जाता था, खुद भी नहीं बैठते थे। मेहमानों को दरवाजे तक छोड़ने जाते थे। महत्त्वपूर्ण मेहमानों को दालान तक पहुँचाते थे। जब वे नब्बे वर्ष से भी अधिक उम्र के थे तब भी ये औपचारिकताएँ निभाते थे। लेकिन पूर्व निश्चित कार्यक्रम के बिना किसी से मिलना वे पसंद नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में वे काफी सख्त थे क्योंकि न तो उनके पास फालतू समय था और न वे यह चाहते थे कि कोई मिलनेवाला उनके इंतजार में अपना समय खराब करे। यदि कोई मिलनेवाला पाँच मिनट भी देर से आए तो यह कहने से नहीं चूकते थे कि, "आपने मेरे पाँच मिनट बरबाद कर दिए।" मिलनेवाले के लिए समय की अवधि पहले ही तय

रहती थी। अवधि पूरी होने से पहले ही विश्वेश्वरैया बार-बार अपनी घड़ी देखने लगते थे। इस पर भी यदि मिलनेवाला इशारा न समझे तो उन्हें हारकर यह कहना ही पड़ता था कि, "बाकी की बातें बाद में होंगी, अभी दूसरे मिलनेवाले इंतजार कर रहे हैं।"

मिलनेवालों से समय की पाबंदी वे कैसे निभाते थे, इस बारे में एक दिलचस्प बात श्री सी० के० वेन्केटरम्मया के साथ घटी। जब वे पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार विश्वेश्वरैया से मिलने पहुँचे तो वे सो रहे थे। उस समय दोपहर का 2.30 बजा था और मुलाकात का समय 2.40 दिया गया था। यह जानकर जब वे वापस लौटने को हुए तो विश्वेश्वरैया के नौकर ने उन्हें ऐसा करने के लिए मना किया। उसने बतलाया कि मेरे मालिक अभी सो रहे हैं लेकिन 2.40 बजे वे आपसे मिलने अवश्य उपस्थित होंगे। जब श्री वेन्केटरम्मया ने पूछा कि क्या उनके पास कोई अलार्म घड़ी रखी है तो उसने बतलाया, "नहीं, मेरे मालिक को इसकी जरूरत नहीं पड़ती, वे 2.35 पर उठकर, हाथ मुँह धोएँगे और फिर ठीक 2.40 पर आपसे मिलने अवश्य आएँगे।" और सचुमच हुआ भी ठीक ऐसा ही।

इसी तरह की एक घटना मैसूर सरकार के मंत्री के साथ घटी। जिस दिन उन्हें विश्वेश्वरैया से मिलने जाना था, उस दिन वे न जा सके वरन् अगले दिन पहुँचे। इस पर विश्वेश्वरैया ने कहा, "आपने दोहरी गलती की, एक तो कल का कार्यक्रम न निभाने की और आज बगैर कार्यक्रम के आने की।"

* * *

विश्वेश्वरैया नियमित रूप से प्रतिदिन दो घण्टे अवश्य टहलते थे। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में भी उन्होंने अपनी यह आदत नहीं छोड़ी। डाक्टर की सलाह पर जब उन्हें घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता था तब भी वे घर के भीतर ही दालान में घूम-घूमकर अपना जी बहला लिया करते थे।

यह अक्सर देखा जाता था कि खुली सड़क पर विश्वेश्वरैया तेजी से डग भरते हुए पैदल चल रहे हैं, पीछे-पीछे उनका नौकर इस तरह चल रहा है मानो दौड़ रहा हो और उन सभी के पीछे धीमी गति से चलती

हुई उनकी कार आ रही है। वास्तव में शहर की सीमा तक विश्वेश्वरैया अपनी कार में बैठकर जाते थे, फिर कार से उतरकर खुली जगह में टहलते थे।

टहलने की आदत विश्वेश्वरैया को बचपन से ही पड़ गई थी। कालेज में पढ़ते समय वे ट्यूशन भी करते थे। इस कारण उन्हें प्रतिदिन पन्द्रह किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था। एक बार जब मैट्रिक की परीक्षा में बैठने की फीस जमा करने के लिए उनके पास पैसे न थे तो वे लगभग 48 किलोमीटर (30 मील) पैदल चलकर बंगलौर से अपनी माता के पास चिकबल्लापुर पहुँचे। फिर भी समय पर फीस जमा न कर सके। लेकिन उच्च अधिकारियों की दखल से देर से जमा की गई फीस भी स्वीकार कर ली गई थी।

* *

विश्वेश्वरैया पूर्णरूप से शाकाहारी थे। उन्होंने मांस व अण्डा कभी नहीं छूआ। शराब क्या, उन्होंने कोई मादक द्रव कभी चखा तक नहीं। सिगरेट वे पीते नहीं थे। उन्होंने सारी दुनिया घूमी पर अपने पर सदा संयम रखा। स्वीडन में जब वे बीमार हुए तो डाक्टर ने उन्हें ब्राँडी की कुछ बूँदें लेने की सलाह दी। इस पर विश्वेश्वरैया ने कहा, "यदि इन बूँदों के बगैर मेरा जीवन नहीं बचाया जा सकता, तो उसे जाने दो!" इसी प्रकार एक बार मैसूर सरकार के एक मंत्री ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कभी मांस, बियर आदि लिया है, तो इसके उत्तर में विश्वेश्वरैया ने कहा, "कभी नहीं।" मंत्री महोदय ने फिर कुरेदते हुए उनसे पूछा, "क्या अपने कभी सिगरेट पी है?" इस पर विश्वेश्वरैया ने कहा कि "मैं अभी तक इतना 'शिष्ट' नहीं हुआ हूँ।"

वे सदा सादा भोजन करते थे। वे सवेरे नाश्ता लेते थे। नाश्ते के साथ कॉफी अवश्य होती थी। दोपहर के खाने के नाम पर ब्रेड के दो टुकड़े या चपाती, थोड़ा-सा चावल, बगैर मसालों की उबली सब्जी, रसम, कटोरी भर दही और सादा या उबला सेब होता था। रात के खाने में भी लगभग यही सब कुछ रहता था। पार्टियों में वे कुछ खाते पीते नहीं थे। वे अक्सर कहा करते थे कि उनकी दीर्घ आयु के पीछे एक कारण यह भी है कि वे खाने के मामले में बहुत सख्ती से अपने पर

नियंत्रण रखते हैं। घर से जाने से पहले वे यह लिख जाया करते थे कि आज वे क्या खाना पसंद करेंगे। यदि किसी मेहमान के आने की संभावना हो तो उसके खाने के बारे में विस्तार से लिख जाते थे।

सन् 1946 में जब विश्वेश्वरैया इंग्लैण्ड गए तो उन्हें अपने मित्रों के साथ होटल में खाना पड़ा। होटल के मालिक को पहले ही यह सूचना दे दी गई थी कि वे शाकाहारी खाना खाएँगे। जब सभी खाने की मेज पर बैठे तो विश्वेश्वरैया को यह देखकर बड़ी हैरानी हुई कि उनके आगे उबली हुई बन्दगोभी रख दी गई है। इसे देखकर विश्वेश्वरैया ने होटल के मालिक से कहा, ''हम लोग शाकाहारी हैं, मांसाहारी नहीं, आप इससे बेहतर चीज बना सकते थे।'' होटल के मालिक को बात समझ में आ गई। कुछ देर बाद ही मन चाहा खाना बनकर आ गया।

* * *

सार्वजनिक जीवन में विश्वेश्वरैया यूरोपीय तौर तरीका अपनाते थे लेकिन घर के भीतर वे एक साधारण मैसूरी ब्राह्मण की तरह रहते थे। दफ्तर तथा घर के बाहर वे पाश्चात्य पोशाक पहनना पसंद करते थे लेकिन घर में धोती पहनते और जनेऊ धारण करते। वे कीमती कपड़े खरीदते व अच्छे से अच्छे दर्जी से सिलवाते। उनकी मान्यता थी कि अच्छे कपड़े पहनने से काम करने की दक्षता बढ़ जाती है। अपनी आदतों के अनुसार वे अपना पहनावा भी त्रुटिहीन रखते थे। मजाल है कि उनके कपड़ों पर कोई सिलवट पड़ जाए। किसी से वे तब तक नहीं मिलते जब तक पूर्ण रूप से तैयार न हो जाएँ। उनके बारे में लोग कहा करते थे कि वे कपड़े पहनने के पहले उन पर इस्त्री करवाते हैं या कपड़े पहनने के बाद। श्री राजगोपालाचार्य ने एक बार उनके बारे में सच ही कहा था कि, ''यदि विश्वेश्वरैया को आधी रात में भी जगा लिया जाए तो उन्हें फोटो लेने लायक सजा सँवरा पाएँगे।''

इंजीनियरिंग कार्यों में वैसे तो वे हैट पहनते थे लेकिन औपचारिक अवसरों पर वे अपनी मैसूरी पगड़ी पहनना न भूलते थे। पगड़ी बाँधने में वे निपुण न थे, इसलिए उन्होंने इस काम के लिए एक नौकर रख लिया था जिसे पगड़ी बाँधने के लिए ही काफी अधिक वेतन देते थे। इस नौकर का काम केवल पगड़ियों को बाँध-बाँधकर टीन के डिब्बों

में रखना होता था। जब विश्वेश्वरैया दौरे पर जाते तो उनके साथ ये डिब्बे भी साथ-साथ चलते।

* * *

विश्वेश्वरैया सभी काम बड़े कायदे से करते थे। कहीं किसी बात की कमी नहीं छोड़ते थे। वे प्रत्येक पत्र का उत्तर देते, किसी पत्र का जवाब न देना उनकी आदत में न था। यदि किसी पत्र के उत्तर में देरी होने की संभावना होती तो वे पत्र प्राप्ति की सूचना तो बगैर बिलम्ब के दे ही देते थे। पत्र भी खूब सोच समझकर लिखते। जरा-सी भी गलती होने पर दुबारा पत्र तैयार करते। शायद ही उनका कोई पत्र या मसौदा ऐसा हो जिसमें कई बार संशोधन न किया गया हो। महत्त्वपूर्ण पत्रों में वे कई बार काट-पीट करते। उनके हाथ से निकले किसी पत्र में कोई गलती नहीं रहती थी।

उनकी हस्तलिपि भी बहुत सुन्दर थी। जो कुछ लिखना होता उसे साफ-साफ शब्दों में लिखते। भाषण भी वे स्वयं तैयार करते। कभी-कभी कुछ मुख्य बातों को रट लेते। बैठकर भाषण देना उन्हें पसंद न था। वृद्धा अवस्था में भी वे खड़े होकर अपना भाषण पढ़ते थे।

* * *

इंजीनियरिंग के कामों को सुचारू रूप से करने पर वे बहुत जोर डालते थे। एक समय वे जब सुरंग बनवाने के काम में व्यस्त थे तब ही उन्हें समाचार मिला कि एक बाँध टूट गया तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। अपने सहयोगी इंजीनियर श्री वर्दराजन को अपनी प्रतिक्रिया बतलाते हुए उन्होंने कहा, "प्रकृति किसी की लापरवाही को क्षमा नहीं करती—सभी इंजीनियरों को यह बात सदैव याद रखनी चाहिए।" सुरंग का काम देखने के लिए 75 वर्षीय विश्वेश्वरैया कभी-कभी तो इतनी ऊँचाई पर चढ़ जाते जहाँ जाना किसी वृद्ध के लिए खतरनाक हो सकता था।

इंजीनियरिंग के कामों में वे सुनी सुनाई बातों पर विश्वास नही करते थे। सन् 1954 में उन्हें बम्बई से लगभग 120 किलोमीटर दूर एक कांक्रीट डेम दिखलाने ले जाया गया। उन्हें डेम के भीतर से लिया गया कांक्रीट का एक नमूना दिखलाया गया जो इंजीनियरिंग दृष्टि से

बहुत उच्च स्तर का था। नमूना दिखाने के बाद जब उनसे डेम के कांक्रीट के बारे में राय माँगी गई तो वे चुप रहे। फिर उन्होंने अपने सामने डेम के भीतरी भाग से नमूने का एक और टुकड़ा निकलवाया और उसकी जाँच करने के बाद ही अपनी राय दी।

* * *

विश्वेश्वरैया को धन का मोह कभी नहीं रहा। धन के लिए नहीं बल्कि ऊँचे काम के अवसर पाने की लालसा में वे एक जगह से दूसरी जगह जाते रहे। भद्रावती के इस्पात कारखाने के अध्यक्ष पद के मानदेय के डेढ़ लाख रुपये उन्होंने दान में दे दिए जिससे बाद में जय चामरेन्द्र अक्युपेशनल इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई। जब वे दीवान के पद पर कार्य कर रहे थे तथा महाराजा ने उनसे वेतन वृद्धि की बात की, विश्वेश्वरैया ने इसे अस्वीकार कर दिया।

वे सरकारी तंत्र का व्यक्तिगत कार्यों में उपयोग के खिलाफ थे। जब वे सरकारी सेवा में थे तो कहा जाता है कि वे लिखने पढ़ने के कागज और ऑलपिन जैसी मामूली चीजों में भी 'व्यक्तिगत' और 'सरकारी' का भेद करते थे। मैसूर राज्य के दीवान पद से इस्तीफा देने के लिए तो वे सरकारी मोटरकार में गए लेकिन वहाँ से लौटे अपनी गाड़ी में।

वे बड़े ईमानदार थे। वे किसी से मुफ्त काम लेने के सख्त खिलाफ थे। जब वे मैसूर के दीवान की हैसियत से दौरे पर थे तब एक दुर्घटना में उनकी अँगुली में जख्म हो गया। उन्होंने सरकारी अस्पताल से डाक्टर बुलवाया जिसने अँगुली के जख्म को धोकर मरहम पट्टी कर दी। डाक्टर को इस बात की प्रसन्नता हो रही थी कि वह एक महान् व्यक्ति के लिए कुछ कर सका। विश्वेश्वरैया अपने कैम्प लौट गए। वहाँ ज़ाकर उन्होंने तुरन्त 25 रुपये का चैक काटा और डाक्टर के पास भेज दिया। चैक देखकर डाक्टर असमंजस में पड़ गया। उसने यह कहकर चैक वापस कर दिया कि उसने केवल अपना कर्तव्य निभाया है। लेकिन विश्वेश्वरैया ने फिर चैक लौटाकर कहा, "जो फीस दे सकते हैं उनसे आप फीस अवश्य लें, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि लालच में आकर आप उनसे फीस लेने लगें जो फीस देने की स्थिति में

नहीं हैं। आपने अपना कर्तव्य निभाया, अब मुझे अपना कर्तव्य निभाने दीजिए।"

विश्वेश्वरैया किसी पर भार डालना नहीं चाहते थे। बचपन में वे ट्यूशन पढ़ाकर पढ़े। अवकाश प्राप्त करने के बाद एक बार वे मैसूर राज्य के तात्कालिक दीवान सर मिर्जा इस्माइल के साथ देहातों में औद्योगिक प्रगति देखने गए। देहातों के औद्योगीकरण की योजना विश्वेश्वरैया ने ही कुछ समय पहले बनाई थी। मैसूर राज्य में उसे प्रयोगात्मक रूप में लागू किया गया था। विश्वेश्वरैया जगह-जगह पर कार से उतरकर नई योजना के बारे में गाँववालों से बातचीत करते। एक गाँव में गाँववासियों ने उन सबके लिए भोज का आयोजन किया। विश्वेश्वरैया पहले ही जानते थे कि इस गाँव के लोग बहुत गरीब हैं, उनके प्रेमभाव को देखकर उन्होंने उनके निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। भोज हो जाने के बाद विश्वेश्वरैया ने मेज पर 10 रुपये का नोट यह कहकर रख दिया कि इस भोज के खर्चे को सभी के बीच बाँटना चाहिए। मैं अपना हिस्सा दिए जा रहा हूँ। उनके ऐसा करने पर अन्य सभी सरकारी अधिकारियों को भी ऐसा ही करना पड़ा।

* * *

विश्वेश्वरैया बड़े विनम्र थे। वे अपने बचपन तक के अध्यापकों की कितनी कद्र करते थे यह बात श्री कृष्णागिरी राघवेन्द्रराव ने बतलाई जो चिकबल्लापुर स्कूल में तब अध्यापक थे जब विश्वेश्वरैया वहाँ पढ़ते थे। एक दिन श्री राव जब बंगलौर की एक भरी सड़क पर जा रहे थे तो अचानक दो घोड़ोंवाली बग्गी उनके पास आकर रुकी। बग्गी में से एक पगड़ीवाला सजा सँवरा व्यक्ति उतरा और श्री राव के सामने नत मस्तक हो गया। श्री राव को यह पहचानने में थोड़ा समय लग गया कि वह व्यक्ति कोई और नहीं, उनका पुराना छात्र था—अब चाहे वह चीफ इंजीनियर हो या दीवान इससे क्या होता है।

* * *

विश्वेश्वरैया शुरू से ही मिलनसार थे। जब उन्होंने अपनी सरकारी सेवा प्रारंभ की तब वे अपने मित्रों के साथ खूब घूमते फिरते

थे और खेलों में भाग लेते थे। पूना प्रवास के दिनों में वे स्थानीय खेल के मैदानों में खेलने जाया करते थे। वे उन सभाओं में भी भाग लेते थे जिनमें नगर के प्रसिद्ध व्यक्ति भी जाते थे। उन्हें यह बात बहुत खटकती थी कि पूना में तब हिन्दुस्तानियों के लिए अलग से कोई क्लब न था।

पूना में एक क्लब खोलने के इरादे से वे डिस्ट्रिक्ट जज एम० जी० रानाडे से मिले और उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें हीराबाग नामक पुराना भवन क्लब के लिए दिला दें। श्री रानाडे को तब यह प्रस्ताव कोई खास पसंद नहीं आया, उन्होंने कहा, "पूना के निवासी तो काम का समय पान-सुपारी-पार्टियों में बिताते हैं, उन्हें क्लब की क्या जरूरत।"

विश्वेश्वरैया क्लब के महत्त्व को समझते थे। आखिर उनके प्रयासों से 17 नवम्बर 1891 को इस क्लब का उद्घाटन हुआ। इस संबंध में विश्वेश्वरैया लिखते हैं कि, "इस अवसर पर हमने हीराबाग भवन की मरम्मत करवाई। निश्चित समय पर क्लब की बैठक आरंभ हुई और केवल दस व्यक्ति इस बैठक में भाग लेने के लिए पहुँचे। यह देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई, परन्तु आधे घण्टे के अन्दर पूना के लगभग 25 व्यक्ति आ पहुँचे और होते-होते यह संख्या 75 तक पहुँच गई।" इस प्रकार पूना में एक हिन्दुस्तानी क्लब की स्थापना हुई जिसका नाम रखा गया **डेकन क्लब**। सन् 1894 में सक्खर तबदील हो जाने तक विश्वेश्वरैया इस क्लब के सचिव रहे।

सन् 1941 में इस क्लब की स्वर्ण जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इन अवसर पर विश्वेश्वरैया को विशेषरूप से आमंत्रित किया गया। सन् 1951 में लिखी अपनी पुस्तक में वे बड़े गर्व के साथ लिखते हैं कि, "गत 60 वर्षों से यह क्लब अपने सदस्यों को खेल और मन बहलाने के अनेक अवसर दे रहा है।"

* * *

विश्वेश्वरैया कर्मठ व्यक्ति थे। वे स्वयं कठिन परिश्रम करते थे और चाहते थे कि अन्य व्यक्ति भी ऐसा ही करें। उन्हें यह देखकर दु:ख होता था कि औसतन भारतीय व्यक्ति काम करने के मामले में

ढीला व सुस्त है।

जब दीवान की हैसियत से वे किसी गाँव के दौरे पर गए तब उनके पास एक ऐसा व्यक्ति लाया गया जो चार व्यक्तियों का खाना अकेले ही एक ही बार में खा लेता था। सभी सोच रहे थे कि उसे देखकर विश्वेश्वरैया खुश होंगे और आश्चर्य व्यक्त करेंगे। लेकिन विश्वेश्वरैया ने उसे देखा और केवल एक ही प्रश्न पूछा, "क्या यह व्यक्ति चार व्यक्तियों के बराबर काम भी करता है?"

* * *

विश्वेश्वरैया आधी शताब्दी से अधिक समय तक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। इतनी लम्बी अवधि में भी उन्होंने कभी भी अपने मित्र, रिश्तेदार या जाति के व्यक्ति को अपने पद का लाभ नहीं उठाने दिया।

वे जाति-पाँति के आधार पर पक्षपात करने के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने सदा योग्यता और शिक्षा को ही महत्त्व दिया। वे चाहते थे कि सभी जाति के लोग उच्च शिक्षा और योग्यता प्राप्त करें। उनका मत था कि योग्यता को महत्त्व न देने से कार्यकुशलता और दक्षता दोनों में कमी आ जाती है।

जिन दिनों विश्वेश्वरैया मैसूर राज्य के चीफ इंजीनियर बने, तो उनके सामने उन व्यक्तियों के नामों की सूची रख दी गई जिन्हें सरकारी नौकरी में लेना था। इस सूची में व्यक्तियों की योग्यताओं के बारे में बातें कम और अन्य बातें विस्तार से लिखी थीं। विश्वेश्वरैया ने सूची वापस करते हुए कहा कि उनके प्रशासनिक काल में केवल योग्यता को ही महत्त्व दिया जाएगा। अन्य बातों को नहीं। मैसूर जैसी रियासत में जहाँ महाराजा का शासन था, विश्वेश्वरैया के इस निर्णय ने धूम मचा दी।

दीवान बनने के तुरंत बाद उन्होंने अपने सगे सम्बन्धियों को दावत में बुलाया। भोजन के बाद उन्होंने अपने सभी रिश्तेदारों के सामने यह बात स्पष्ट कर दी कि वे इस आशा से यह उच्च पद स्वीकार कर रहे हैं कि उनका कोई रिश्तेदार नौकरी या अन्य सरकारी मामलों में मदद के लिए उनके पास नहीं आएगा। उनकी यह बात सुनकर उनके कुछ रिश्तेदार तो नाराज होकर चले गए।

किसी व्यक्ति की सिफारिश करने में भी विश्वेश्वरैया बड़े सतर्क रहते थे। जब तक उस व्यक्ति में योग्यता न हो, वे सिफारिशी पत्र नहीं देते थे। एक बार श्री वी० पी० माधवराव के पौत्र श्री बी० वी० पाटनकर उनके पास आए और किसी संस्थान की सदस्यता के लिए उनके हस्ताक्षर चाहे। इस पर विश्वेश्वरैया ने सीधे ही कहा, "हाँ, मैं तुम्हारे बाबा को तो जानता हूँ। वास्तव में वही मुझे मैसूर राज्य की सेवा में लाए थे। मैं उनका बहुत एहसान मानता हूँ। लेकिन न तो मैं तुम्हें जानता और न ही तुम्हारी योग्यताओं को। ऐसी दशा में यदि कोई अन्य व्यक्ति तुम्हारा नाम प्रस्तावित करे तो मैं उसका अनुमोदन कर सकता हूँ।"

* * *

विश्वेश्वरैया जो ठीक समझते थे, उसे बगैर झिझक के साफ-साफ कह देते थे। सन् 1947 की बात है। देश के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अखिल भारतीय निर्माता संघ की वार्षिक बैठक के उद्घाटन के लिए आए हुए थे। अखिल भारतीय निर्माता संघ के अध्यक्ष की हैसियत से बोलते हुए विश्वेश्वरैया ने भारत की औद्योगिक नीति की कड़ी आलोचना की। नेहरू जी यह सब सुनकर हैरान रह गए। उनका चेहरा तमतमाने लगा। मौका मिलते ही वे उठ खड़े हुए और उन्होंने विश्वेश्वरैया की बातों का डटकर विरोध किया। विश्वेश्वरैया भी कैसे पीछे रहते, वे भी तर्क पर तर्क देते रहे। इसी बीच उन्होंने प्रधानमंत्री को मोती लाल नेहरू कह डाला। यह सुनकर पं० जवाहर लाल नेहरू ने तुरन्त उनकी गलती बतलाई। इस गलती पर विश्वेश्वरैया कुछ झेंपे तो, लेकिन बात सँभालते हुए बोले, "मैं तो आपके पिताजी की पीढ़ी का हूँ और उन्हें इतनी अच्छी तरह जानता हूँ कि उनका नाम मेरी जबान पर आसानी से आ जाता है। उन दिनों तो आप केवल लड़के थे।" यह सुनकर सारा वातावरण हँसी से गूँज गया।

इसी प्रकार की घटना तब घटी जब वे गांधी जी की हत्या से लगभग एक महीना पहले बिरला हाउस में उनसे मिले। तब भावनगर के महाराजा और दीवान भी आए हुए थे। विश्वेश्वरैया और गांधीजी में

देहातों के औद्योगीकरण के बारे में शुरू से ही मतभेद चल रहे थे। उस मुलाकात में भी विश्वेश्वरैया ने देहातों के औद्योगीकरण के लिए जोरदार तर्क दिए। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जब तक देहातों में उद्योगों के लिए बिजली की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक न तो गरीबी मिटाई जा सकती है और न ही देश प्रगति कर सकता है। गांधी जी यह मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने कुछ मजाक के तौर पर कहा कि वे विश्वेश्वरैया को एक महान् इंजीनियर तो मानते हैं पर भारत की समस्याओं के बारे में वे स्वयं बेहतर जानते हैं। उसी वातावरण में विश्वेश्वरैया ने कहा, "मैं आपसे 10 वर्ष बड़ा हूँ और मुझे आपसे अधिक तजुर्बा है।" इस पर गांधी जी ने बात खत्म करते हुए कहा, "अरे, मैं तो यह भूल ही गया था कि आप मुझसे सचमुच बड़े हैं।"

विश्वेश्वरैया को अपनी उम्र का ध्यान सदा रहता था। एक बार वे एक मंदिर में गए। उस मंदिर का पुजारी विश्वेश्वरैया को जानता था। उन्हें देखते ही वह बहुत खुश हुआ और बोला, "मेरे बाबा उन दिनों आपके साथ काम करते थे जब आप मैसूर रियासत के दीवान थे।" यह सुनकर विश्वेश्वरैया ने अपने साथ आए हुए अन्य लोगों से कहा, "क्या मैं इस ग्रह पर समय से अधिक जिन्दा रह चुका हूँ।"

* * *

विश्वेश्वरैया आंकड़ों को बहुत महत्त्व देते थे। जब कभी आवश्यकता होती वे आंकड़े देकर अपनी बात मनवा लेते। पाश्चात्य देशों और भारत के बीच आर्थिक दृष्टि से कितना अन्तर है यह बतलाने के लिए उन्होंने आंकड़े एकत्र किए। केवल यह कह देना कि अमुक देश के नागरिकों का जीवन स्तर ऊँचा है, तब तक कोई खास अर्थ नहीं रखता जब तक हम आंकड़े न दें। दो देशों के ऐसे आंकड़े देखकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यह देखा जा सकता है कि समय के साथ यह अन्तर बढ़ रहा है या घट रहा है। आंकड़ों के आधार पर ही वे कई बार अपने विरोधियों से जीत सके। जब यह कहा जाने लगा कि उन्होंने मैसूर राज्य का दिवाला निकाल दिया तो उन्होंने आय-व्यय के आंकड़े देकर विरोधियों का मुँह बन्द कर दिया।

* * *

विश्वेश्वरैया अपने साथ एक लिफाफा अवश्य रखते थे जिसके भीतर कागज के मुड़े हुए कुछ पन्ने होते थे। उनके पास रबर लगी पेंसिल भी रहती थी। जहाँ जाते, वहाँ जो कुछ अच्छा लगा उसे कागज की चिटों पर लिखकर लिफाफे में डालते जाते थे। इस प्रकार प्रतिदिन तीन चार लिफाफे भर जाते। घर पहुँचकर इन पर लिखी बातें पढ़ते और आवश्यक बातें नोटबुक में नोट कर लेते। उनकी मेज पर लाल, हरी, नीली और काली पेंसिलें, शार्पनर, चाकू, कैंची और गोंद की बोतल हमेशा रखी रहती थी। महात्मा गांधी की तरह वे भी पत्रों, आमन्त्रण पत्रों आदि से खाली पन्ने निकालकर उनका उपयोग करते थे।

* * *

जिन दिनों विश्वेश्वरैया दीवान थे, वे बड़े ठाठ बाट से दौरे पर जाते थे। उनके साथ सभी विभागों के अधिकारी अवश्य रहते थे। वे वन, रेवेन्यू, एक्साइज़, पुलिस, कोषालय, अस्पताल, नगरपालिका, स्कूल, आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार के दफ्तरों का मुआयना करते। महत्त्वपूर्ण बातें लिखने के लिए वे कागज पेंसिल सदा अपने पास रखते थे।

अफसरों को सही मार्ग दिखलाने के लिए वे कभी-कभी अजीब तरीके भी अपनाते थे। एक बार उन्होंने सभी अफसरों से पूछा कि उन्हें क्या-क्या शौक है, और क्या वे पुस्तकें भी पढ़ते हैं। बहुत से अफसरों ने बढ़ाचढ़ा कर अपनी रुचियों के बारे में लिख भेजा। उन्हें आशा थी कि उनकी सूची को देखकर शायद उन्हें प्रमोशन में प्राथमिकता मिले। कुछ दिनों में सभी इस घटना को भूल गए। लगभग एक वर्ष बाद उन सभी अफसरों को एक पत्र लिखा जिसमें उनसे यह पूछा गया था कि गत वर्ष में उन्होंने कौन-कौन सी नई पुस्तकें पढ़ीं। इस घटना के पीछे विश्वेश्वरैया का एक ही उद्देश्य था कि उनके राज्य के अफसर साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान की पूरी जानकारी रखें।

वे अफसरों को सही रास्ते पर लाने के लिए सभी प्रयत्न करते थे। इसका एक उदाहरण है उस डिप्टी कमिश्नर का जो कभी भी समय पर दफ्तर नहीं पहुँचता था। उसे पूजा पाठ से फुर्सत ही नहीं मिलती

थी। सरकार ने उसे कई बार चेतावनी दी पर उस पर कोई असर न पड़ा। अन्त में उसका स्थानान्तर सचिवालय में कर दिया गया। पहले दिन ही विश्वेश्वरैया उसे अपने कमरे में ले गए। उसे साथ लगा कमरा भी दिखलाया जिसमें सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ थीं। डिप्टी कमिश्नर यह सब कुछ देखकर बहुत खुश हुआ और उसने आधुनिक सुख सुविधाओं की तारीफ की। पर यह न समझ पा रहा था कि विश्वेश्वरैया उसे यह सब कुछ क्यों दिखला रहे हैं। इसका राज अगले दिन तब खुला जब विश्वेश्वरैया ने उसे बुलाकर कहा कि वह ठीक 9 बजे सुबह दफ्तर आए—उसकी अगवानी के लिए वे स्वयं 15 मिनट पहले दफ्तर पहुँच जाएँगे। यह सुनकर डिप्टी कमिश्नर के होश गुम हो गए। उसने तरह-तरह के तर्क दिए, कहा कि उसे संध्या और पूजा करने में इतना समय लग जाता है कि वह दोपहर से पहले दफ्तर पहुँच ही नहीं सकता। इस पर विश्वेश्वरैया ने कहा कि यह पूजा आदि वह उस कमरे में कर सकते हैं जिसे उसने कल देखा था।

* * *

विश्वेश्वरैया बड़े स्वाभिमानी थे। उन्होंने कभी भी अपने को अंग्रेजों से कम नहीं समझा। उन्हें अपने सम्मान की रक्षा करनी आती थी। जब उन्हें महसूस हुआ कि बम्बई राज्य में उन्हें चीफ इंजीनियर केवल इसलिए नहीं बनाया जाएगा क्योंकि वे भारतीय हैं तो उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। वे अपने से कम योग्यता वाले ऐसे व्यक्ति के नीचे काम करने को तैयार न थे जो केवल अंग्रेज होने की वजह से उनका अफसर बना हो।

इसी तरह की एक घटना तब घटी जब वे मैसूर राज्य में चीफ इंजीनियर थे। उन दिनों मैसूर दरबार सारे देश भर में मशहूर था। दूर-दूर से लोग इसे देखने आते थे। इस दिन प्रजा अपने महाराजा के प्रति निष्ठा दिखलाने आती थी। ऐसे ही एक दरबार में अंग्रेज रेजीडेण्ट को भी आमन्त्रित किया गया। उसे बहुत शान शौकत से दरबार में लाया गया। दरबार में आते ही उसे तोपों की सलामी दी गई। उसे महाराजा के सीधे हाथ वाली कुर्सी पर बैठाया गया। यह घटना सन् 1911 की है। तब विश्वेश्वरैया को भी चीफ इंजीनियर होने के कारण

आमन्त्रण मिला। लेकिन पिछले वर्षों के अनुभवों पर उन्होंने महाराजा को लिख भेजा कि उन्हें दरबार में उपस्थित न होने के लिए माफ किया जाए। उन दिनों सर मिर्जा इस्माइल हजूर सेक्रेटरी थे। उन्होंने तुरन्त विश्वेश्वरैया से जवाब तलब किया क्योंकि आमंत्रण मिलने पर भी दरबार में न आना एक प्रकार की अनुशासनहीनता समझी जाती थी। विश्वेश्वरैया ने अपने मन की बात बतला दी कि उन्हें यह देखकर बहुत बुरा लगता है कि मैसूर रियासत के सभी यूरोपीय अफसरों को कुर्सियों पर बैठाया जाता है, दीवान से लेकर सभी भारतीय अतिथि दरी चादर पर बैठते हैं। विश्वेश्वरैया की बात महाराजा को समझ आ गई। उन्होंने फौरन हिदायत दी कि सरकारी उत्सवों में सभी अतिथियों के लिए कुर्सियों का प्रबन्ध रखा जाए, चाहे वे भारतीय हों अथवा यूरोपीय।

इंजीनियरिंग के क्षेत्र तक में वे विदेशी विशेषज्ञों को स्थाई तौर पर रखने के पक्ष में न थे। उन्हें अपने देशवासियों पर पूरा भरोसा था। एक बार एक अमेरिकन फर्म से मैसूर राज्य में एक कारखाना लगाने की बात चल रही थी। सब कुछ तय हो गया। लेकिन समझौता इसलिए नहीं हो सका क्योंकि वह फर्म भारतीय कारीगरों को प्रशिक्षण नहीं देना चाहती थी। इस प्रकार विश्वेश्वरैया के लिए देश का सम्मान ही सर्वोपरि था।

□□

मान-सम्मान

हमारे देश का सबसे ऊँचा अलंकार है **भारतरत्न**। यह सम्मान भारत के इने-गिने लोगों को ही प्राप्त हो सका है। इस सर्वोच्च अलंकार को पाने वाले व्यक्तियों में सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, पं० जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी, सर सी० वी० रमन जैसे महान् व्यक्तियों के नाम हैं। इसी कड़ी में बुधवार दिनांक 7 सितम्बर 1955 को नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में जो समारोह हुआ उसमें यह सर्वश्रेष्ठ अलंकार विश्वेश्वरैया को भी प्रदान किया गया। देश के प्रति समर्पित सेवाओं के लिए उन्हें यह सम्मान मिला। अब तक केवल वे ही एकमात्र इंजीनियर हैं जिन्हें देश का सर्वोच्च अलंकार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

अलंकार समारोह में विश्वेश्वरैया के सम्मान में जो प्रशस्ति पढ़ी गई उसमें अन्य बातों के अलावा कहा गया था कि, "ये एक महान् इंजीनियर, उद्योगदक्ष और राजनीतिज्ञ हैं और भारत में शायद ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है जिसने इतनी आयु तक देश की इतनी और इतने प्रकार से सेवा की है जितनी विश्वेश्वरैया ने। वे **भारत का पुनर्निर्माण** और **भारत के लिए योजनाबद्ध अर्थविकास** नामक दो पुस्तकों के रचयिता थे। वे भारत में योजनाबद्ध विकास के विचार के जनक थे।"

कहा जाता है कि जब विश्वेश्वरैया को भारतरत्न दिया जाने वाला था तो उन्होंने पं० नेहरू को यह कहला भेजा कि, "यदि आप यह समझते हों कि इस अलंकार को लेकर मैं आपकी सरकार की प्रशंसा करूँगा तो आपको निराशा ही होगी। मैं तो तथ्य ढूँढ़नेवाला व्यक्ति हूँ।" पं० नेहरू ने विश्वेश्वरैया के इस कथन की सराहना की और

उनसे अनुरोध किया कि इस अलंकार को ग्रहण करें।

भारतरत्न से पहले विश्वेश्वरैया को समय-समय पर अनेक सम्मान मिले थे। सन् 1911 में दिल्ली दरबार में उन्हें **कम्पैनियन ऑफ इंडियन इम्पायर** (सी० आई० ई०) के खिताब से सम्मानित किया गया था। मैसूर राज्य में वाइसराय की यात्रा के बाद सन् 1915 में वे **नाइट कमांडर ऑफ दी आर्डर ऑफ दी इंडियन इम्पायर** (के० सी० आई० ई०) से सम्मानित किए गए थे। इस प्रकार वे **सर विश्वेश्वरैया** बने।

विश्वेश्वरैया को आठ विश्वविद्यालयों से मानद उपाधियाँ प्राप्त हुईं। बम्बई और मैसूर विश्वविद्यालयों से एल-एल० डी०, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और आंध्र विश्वविद्यालय से डी० लिट्० तथा कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद और जादवपुर विश्वविद्यालयों द्वारा उन्हें डी० एससी० की मानद उपाधियाँ दी गईं। उन्होंने समय-समय पर अनेक विश्वविद्यालयों के दीक्षांत-भाषण भी दिए।

रायल एशियाटिक सोसायटी, काउंसिल ऑफ बंगाल, कलकत्ता द्वारा फरवरी 1958 में विश्वेश्वरैया को **दुर्गाप्रसाद खेतान स्वर्ण पदक** प्राप्त हुआ।

विश्वेश्वरैया का संबंध देश और विदेश की अनेक प्रसिद्ध संस्थाओं से रहा। वे सन् 1887 में ही इंस्टीट्यूट ऑफ सिविल इंजीनियर्स के सह सदस्य बन गए थे और सन् 1904 में सदस्य। सन् 1952 में उनका नाम इंस्टीट्यूट की सूची में बगैर शुल्क के रखना तय हुआ। इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स (भारत) के तो वे सन् 1943 से सम्मानित आजीवन सदस्य थे ही। इसी प्रकार वे इंडियन साइंस कांग्रेस ऐसोसिएशन के सम्मानित सदस्य व इंस्टीट्यूट ऑफ टाउन प्लानिंग (भारत) के सम्मानित फैलो भी रहे।

बंगलौर का इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस भारत का संसार प्रसिद्ध संस्थान है। विश्वेश्वरैया इस संस्थान की कोर्ट के लगातार 9 वर्षों तक अध्यक्ष रहे। टाटा आयरन और स्टील कम्पनी हमारे देश की एक बहुत बड़ी कम्पनी है। विश्वेश्वरैया इस कम्पनी के लगभग 28 वर्षों तक डायरेक्टर रहे। उन्होंने जनवरी 1923 में लखनऊ में हुए इंडियन

साइंस कांग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता भी की।

विश्वेश्वरैया सौ वर्ष से अधिक जीवित रहे। यह उनके संयमित और सतत् कार्यशील रहने का ही परिणाम था। उनका कहना था कि बिना काम में लगे कोई व्यक्ति दीर्घजीवी नहीं हो सकता—अकर्मण्यता जीवन की जड़ काटती है। विश्वेश्वरैया का जन्म शताब्दी समारोह 15 सितम्बर 1960 में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। मुख्य उत्सव बंगलौर के लालबाग में हुआ। इस उत्सव में भाग लेने के लिए पं० जवाहर लाल नेहरू विशेष रूप से बंगलौर पहुँचे थे। उत्सव की अध्यक्षता मैसूर के राज्य प्रमुख महाराजाधिराज सर चामराज वाडियार ने की। इस अपने लाड़ले सपूत को सम्मान देने के लिए बंगलौर की जनता उमड़ पड़ी। उत्सव के अधिकारियों ने सोचा था कि विश्वेश्वरैया को उनके निवास से लालबाग तक पहुँचने में पन्द्रह मिनट लगेंगे लेकिन उस समय भीड़ इतनी अधिक थी कि पुलिस की सहायता के बावजूद भी उनकी कार को पहुँचने में बहुत अधिक समय लग गया। पं० नेहरू और महाराजाधिराज वाडियार चुपचाप एक घण्टे से भी अधिक समय तक विश्वेश्वरैया के आने का इंतजार करते रहे।

इस अवसर पर पं० नेहरू ने कहा कि, "एक ऐसे व्यक्ति का जो स्वप्नद्रष्टा, विचारक और कर्मठ है, हम किस प्रकार सम्मान करें? आपके जो स्वप्न साकार हो चुके हैं, वे अपने लिए नहीं वरन् देश के लिए थे।"

महाराजाधिराज वाडियार ने विश्वेश्वरैया की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा, "इंजीनियरिंग के सभी क्षेत्रों में विशेषकर सिंचाई, जलाशय, बाँध एवं जल वितरण, विद्युत उत्पादन, पुल निर्माण, विश्वविद्यालयी शिक्षा, तकनीकी एवं औद्योगिक प्रशिक्षण, शहर निर्माण, उद्योग एवं बैंकिंग, व्यापार एवं निर्माण में उन्होंने हमारे महान् देश के अनेक भागों में हाथ व दिमाग की अमिट छाप छोड़ी है। विशेषरूप से मैसूर राज्य तो उनकी कारीगरी, दूरदर्शता, विशेषज्ञता और बुद्धिमत्ता का ऋणी है। इन्ही के कारण मैसूर राज्य इतना सुनियोजित विकास कर सका है।"

उनकी जन्म शताब्दी पर भारत सरकार ने एक विशेष डाक टिकट जारी किया। इस पर विश्वेश्वरैया का चित्र अंकित था। विश्वेश्वरैया की उपलब्धियों को दिखलाने के लिए एक फिल्म भी बनाई गई।

जन्म शताब्दी के अवसर पर पं० नेहरू और महाराजाधिराज वाडियार के अनुरोध की परवाह न करते हुए विश्वेश्वरैया ने अपना छपा हुआ भाषण खड़े होकर पढ़ा था। इस तरह उन्होंने समारोह की औपचारिकता का निर्वाह किया।

असाधारण प्रतिभा के धनी, भारत के महान् सपूत विश्वेश्वरैया का देहान्त शनिवार, 14 अप्रैल 1962 को बंगलौर में सवेरे सवा छः बजे हुआ।

भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की सलाह पर विश्वेश्वरैया का अंतिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ किया गया। विश्वेश्वरैया की इच्छा के अनुसार उनका अंतिम संस्कार उनके गाँव में किया गया। इस अवसर पर पुलिस ने बन्दूकें चलाकर महान् देशभक्त को सलामी दी।

विश्वेश्वरैया अब हमारे बीच नहीं परन्तु उनका जीवन आने वाली पीढ़ियों को सदा प्रेरणा देता रहेगा। □ □

परिशिष्ट

मुख्य घटनाओं का विवरण

1861 – जन्म, 15 सितम्बर
1875 – सेन्ट्रल कालेज, बंगलौर में प्रवेश
1880 – बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की
– पूना के कालेज ऑफ साइंस में इंजीनियरिंग शिक्षा के लिए प्रवेश
1883 – इंजीनियरिंग की डिग्री, एल० सी० ई० प्राप्त की
1884 – बम्बई लोक कल्याण विभाग में सहायक इंजीनियर के पद पर नासिक में नियुक्ति
1885 – प्रथम ग्रेड इंजीनियर के पद पर पदोन्नति
1887 – इंस्टीट्यूट ऑफ सिविल इंजीनियर्स (लंदन) के सहायक मेम्बर चुने गए
1991 – डेकन क्लब, पूना की स्थापना
1894 से 1895 – सिंध, सक्खर में जल वितरण एवं वर्षा और गंदे जल निकास व्यवस्था का कार्यभार
1896 – सूरत में स्थानान्तरण
1897 – पूना में वापसी
1898 – जापान यात्रा
1899 – एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, पूना सिंचाई की ब्लाक वितरण व्यवस्था
1901 – ऐक्टिंग सेनेटरी इंजीनियर
1091 से 1903 – स्वयं चालित विश्वेश्वरैया फाटक
1904 – सेनेटरी इंजीनियर के पद पर स्थाई नियुक्ति

1905 – वर्तमान ड्यूटी के अतिरिक्त जल वितरण के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त हुए

1906 – अदन में पीने के जल की व्यवस्था

1907 – तीन सुपरिन्टेंडेण्ट डिवीजनों का अतिरिक्त चार्ज

– बीजापुर और धारवाड़ के लिए पीने के जल की योजनाएँ बनाई

– समय से पहले सेवामुक्त होने के लिए प्रार्थना पत्र दिया

1908 से 1909 – इटली, इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, स्वीडन, रूस आदि की यात्राएँ

1909 – हैदराबाद में विशेष सलाहकार इंजीनियर नियुक्त हुए (अप्रैल में)

मैसूर में चीफ इंजीनियर नियुक्त हुए (नवम्बर में)

मैसूर राज्य में रेलों के विस्तार की योजना

कृष्णराजा सागर बाँध योजना

1911 – अध्यक्ष, आर्थिक कान्फ्रेंस, सी० आई० ई०

1912 – मैसूर राज्य के दीवान नियुक्त हुए (नवम्बर में)

1913 – बैंक ऑफ मैसूर की स्थापना

1914 – मेकेनिकल इंजीनियरिंग स्कूल की स्थापना

1915 – बंगलौर व मैसूर में पब्लिक लायब्रेरी

1916 – इंजीनियरिंग कालेज, बंगलौर की स्थापना

मैसूर चेम्बर ऑफ कामर्स की स्थापना

बड़े-बड़े प्रिंटिंग प्रेस लगवाए

साबुन, चंदन, तेल, धातु, चमड़े के उद्योग लगवाए

1917 से 1918 – इंडियन प्रिन्सेस एवं मिनिस्टर्स कमेटी की सदस्यता

आयरन वर्क्स भद्रावती की योजना

भतकुल में बन्दरगाह की योजना

जोग जल विद्युत् योजना

1919 – मैसूर राज्य के दीवान पद से सेवामुक्ति

1919 से 1920 – जापान, कनाडा, अमेरिका आदि देशों की यात्राएँ।
भारत का पुनर्निर्माण (Reconstructing India) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।

1921 – कलकत्ता विश्वविद्यालय से डी० एससी० (इंजीनियर अध्यक्ष, बम्बई टैक्निकल एवं इण्डस्ट्रियल ऐजुकेशन कमेटी

1922 – अध्यक्ष, सर्वदलीय राजनैतिक कान्फ्रेंस, बम्बई
राजधानी (नई दिल्ली) निर्माण कमेटी की सदस्यता

1923 – अध्यक्ष, इंडियन साइंस कांग्रेस (लखनऊ)
अध्यक्ष, भद्रावती आयरन वर्क्स, ऑक्युपेशनल इंस्टीट्यूट, बंगलौर के लिए प्रस्ताव

1924 – अध्यक्ष, इंडियन इकोनोमिक कान्फ्रेंस (बम्बई)

1925 – बंगलौर के लिए पीने के जल की योजना

1926 से 1927 – यूरोप और अमेरिका की यात्राएँ
डायरेक्टर, टाटा आयरन एंड स्टील बोर्ड (1927-1955)

1930 – हैदराबाद सिटी के विकास की योजना

1931 – बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर ऑफ ला

1934 – भारत के लिए योजनाबद्ध अर्थविकास (Planned Economy of India) नामक पुस्तक का प्रकाशन

1935 – ओटोमोबाइल इंडस्ट्री के अध्ययन के लिए यूरोप, अमेरिका आदि की यात्राएँ

1937 – बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से डी० लिट्०

1938 – अध्यक्ष, कोर्ट ऑफ इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स (1938 से 1947 तक)

1939 – वायुयान फैक्ट्री की योजना
उड़ीसा बाढ़ पर रिपोर्ट
गोवा के लिए पीने के जल की योजना

1941 – ऑल इंडिया मैन्यूफैक्चरिंग आरगेनाजेशन की स्थापना एवं अध्यक्षता

1944 – पटना यूनिवर्सिटी से डी० एससी०

1946 से 1947 – ऑल इंडिया मैन्यूफैक्चरिंग आरगेनाजेशन के शिष्टमंडल के अध्यक्ष के रूप में अमेरिका यात्रा, मद्रास और हैदराबाद के बीच तुगभद्रा वाटर वर्क विवाद सम्बन्धी कमेटी की अध्यक्षता

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से डी० एससी०

1948 – मैसूर यूनिवर्सिटी से डी० एससी०

1949 – गाँव के लिए उद्योगों की योजना

1951 – मेरे कामकाजी जीवन के संस्मरण (Memories of my Working Life) नामक पुस्तक का प्रकाशन

1953 – आंध्र यूनिवर्सिटी द्वारा डी० लिट्

1955 – भारतरत्न से सम्मानित

1958 – जादवपुर यूनिवर्सिटी द्वारा डी० एससी०

1958 – रायल एशियाटिक सोयायटी, काउंसिल ऑफ बंगाल द्वारा दुर्गाप्रसाद खैतान स्वर्ण पदक प्रदान

1960 – जन्म शताब्दी समारोह

1962 – मृत्यु, 14 अप्रैल

□ □